श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
(५३)

समस्थानसूत्र सार्थ

(पञ्चम स्कन्ध)

मूलरचयिता
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानंद" महाराज

प्रकाशक
आनन्द प्रकाश जैन वकील,
२०१ पुलिस स्ट्रीट मेरठ सदर (उ० प्र०)

दिसम्बर सन् १९५५

[एक आना प्रति रुपया कमीशन व १५ प्रति खरीदने पर १ प्रति विना मूल्य।]

न्योछावर दो रुपया

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तकों की शुभ नामावली निम्न प्रकार हैं:—

१	श्रीमान	ला० महावीर प्रसाद जी जैन बैंकर्स सदर मेरठ	३००१)
२	,,	,, मित्रसैन जी नाहरसिंह जी जैन मुजफ्फरनगर	१००१)
३	,,	,, प्रेमचन्द जी ओमप्रकाश जी जैन सर्राफ मेरठ	१००१)
४	,,	,, सलेखचन्द जी लालचन्द जी मुजफ्फरनगर	११०१)
५	,,	,, कृष्णचन्द जी जैन रईस देहरादून	११०१)
६	,,	,, दीपचन्द जी जैन रईस देहरादून	१००१)
७	,,	,, बारूमल जी प्रेमचन्द जी जैन मंसूरी	११०१)
८	,,	,, बाबूराम जी मुरारीलाल जी जैन ज्वालापुर	१००१)
९	,,	,, केवलराम जी उग्रसैन जी जगाधरी	१००१)
१०	,,	,, गैंदामल जी दगड़ूसाह जी जैन मवाना	१००१)
११	,,	,, मुकन्दलाल जी गुलशनराय जैन नईमंडीमु०	१००१)
१२	,,	,, कैलाशचन्द जी जैन देहरादून	१००१)
१३†	,,	,, शीतल प्रसाद जी जैन मेरठ सदर	१००१)
१४†	,,	,, सुखबीरसिंह जी हेमचन्द जी सर्राफ बड़ौत	१००१)
१५†	,,	,, बाबूराम जी अकलंक प्रसादजी जैन रईस तिस्सा	१००१)
१६†	,,	,, जयकुमार वीरसैन जी सर्राफ मेरठ	१०००)
१७†	,,	,, फूलचन्द बैजनाथ जी मुजफ्फरनगर	१०००)
१८†	,,	,, सेठमोहनलालजी ताराचन्दजी बड़जात्या जयपुर	१००१)
१९†	,,	,, सेठ भंवरीलाल जी जैन कोडरमा	१०००)
२०†	,,	,, बा० दयाराम जी जैन S. D. O. मेरठ सदर	१०००)
२१†	,,	,, मुन्नालाल यादवराय जी मेरठ सदर	१०००)
२२×	,,	,, जिनेश्वरदास जी श्रीपाल जी जैन शिमला	१००१)
२३×	,,	,, धनपतराय लाल जी निरंजनलाल जी शिमला	१००१)

नोट—जिनके नुद्र रुपये आगये हैं उनके पहले † यह निशान अंकित है।
× इनके रुपये दृ ही के पास हैं। और सबके रु० आ गये हैं।

दो शब्द

प्रियपाठक वृन्द ! आपके हाथमें यह समस्थान सूत्र पञ्चमस्कन्ध आरहा है। इस में १६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४-२५-प्रकारके जो जो अर्थ होते हैं उनका वर्णन है। यद्यपि ये अध्याय अभी पूर्ण नहीं हो पाये हैं तथापि इनमें भी आप बहुत अर्थोंका समावेश पालेंगे।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
" श्रीमत्सहजानन्द " महाराज

द्वारा विचित यह कोश सदृश ग्रन्थ ११० अध्यायों में है जिसमें ४ स्कंधोंमें १५ अध्याय प्रकाशित हो चुके हैं उसके पश्चात् २५ अध्याय तक इसमें प्रकाशित है।

इस स्कन्धके सूत्रोंकी भाषा टीका श्रीमान सिद्धान्तवाचस्पति पं वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौरकी सम्मतिसे उनके सुपुत्र श्रीमान जैनदर्शनाचार्य पं धन्यकुमार जी M. A. ने की है एतदर्थ दोनों महानुभावोंके हम आभारी है। आगे के भी करीब ८० अध्याय उक्त पंडितजी ने टीका की है यदि सुविधा अनुकूल होसकी तो उन स्कंधोंको भी शीघ्र आके सामने लानेका प्रयत्न करेंगे। विज्ञेष्वलम्।

उपाध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी
श्री सहजानन्दशास्त्रमाला
दिसम्बर सन् १९५५

समाजसेवक-
महावीरप्रसाद जैन बैंकर्स
मेरठ सदर (उ०प्र०)

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

—:०★०:—

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक॥

१

मैं वह हूँ जो हैं भगवान । जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान । वे विराग यहँ रागवितान ॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान । अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान ।
किन्तु आशावश खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ॥

३

सुख-दुख दाता कोइ न आन । मोह राग रुष दुखकी खान ॥
निजको निज परको पर जान । फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम । विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुँचू निजधाम । आकुलताका फिर क्या काम ॥

५

होता स्वयं जगत परिणाम । मैं जगका करता क्या काम ॥
दूर हटो परकृत परिणाम । 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्य ॐ

समस्थान सूत्र पञ्चम स्कन्ध

मूल रचयिता

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्यश्री मनोहरजी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सूत्र-दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतानतीचाराऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेगाः शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य-वचनभक्त्यावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वानि तीर्थं-करत्वाश्रवभावनाः ॥१॥

नामकर्मकी तेरानवें प्रकृतियोंमें से एक प्रकृति का नाम तीर्थंकर प्रकृति है। यह अति उच्च सम्मान, प्रतिष्ठा, एवं आदर प्राप्तिकी प्रदायिका है। इसकी प्राप्ति महान पुण्यसे होती है। पुण्य-प्राप्ति, शुभ भावनाओं एवं तदनु कूल आचरण से होती है। इन शुभ भावनाओं की संख्या; जिससे तीर्थंकर पद प्राप्त होता है, सोलह है। सोलह १६ भावनाओंके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं :-

(५) संवेग (६) शक्तितस्त्याग (७) शक्तितस्तप (८) साधु-समाधि (९) वैयावृत्यकरण (१०) अर्हद्भक्ति (११) आचार्यभक्ति (१२) बहुश्रुतभक्ति (१३) प्रवचनभक्ति (१४) आवश्यक – अपरिहाणि (१५) मार्गप्रभावना (१६) प्रवचनवत्सलत्व ।

(१) दर्शनविशुद्धि :– निःशंकितादि आठ अंगों सहितपरम वीतरागी, अर्हन्त, सर्वज्ञ जिनेन्द्रभगवान के द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ मोक्षके मार्ग की श्रद्धाके होने पर आत्माओंके कल्याणकी उत्कृष्ट भावना रूप विशुद्ध परिणाम होना है उसका नाम दर्शनविशुद्धि है

(२)विनयसम्पन्नता :– मोक्षके साधनभूत, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रमें इन तीनोंके साधनोंमें तथा गुरु आदिके प्रति अपनी योग्यताके अनुसार सत्कार (आदर) भाव रखना विनय सम्पन्नता है । क्रोध मान माया लोभादिरूप जो कषाय हैं उनकी निवृत्ति होनेको भी विनयसम्पन्नतामें गर्भित किया गया है।

(३) शीलव्रतानतिचार :– चारित्रके भेद जो अहिंसामें जो मन वचन कायकी अतिचार या दोषरहित वृत्तिका होना है उसे शीलव्रतानतिचार कहते हैं ।

(४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग :– अज्ञानकी निवृत्ति जिसका मुख्य फल है, हितकी प्राप्ति, अहितका परिहार

और अनुमय की उपेक्षारूप जिसका गौण फल है ऐसे ज्ञानकी सतत भावना भाना, उसमें सदैव अपने आपके उपयोग (चित्तवृत्ति) को लगाये रखना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहलाता है।

(५) संवेग :– नाना प्रकारके बहुतसे शारीरिक एवं मानसिक दुःखोंसे उत्पन्न होनेवाले दारुण संतापों, वेदनाओं, एवं तकलीफों का चिंतवन कर संसारसे सदा भयभीत रहना, उसमें रचना पचना नहीं सो संवेग भाव कहलाता है।

(६) शक्तितस्त्याग :– दूसरोंको राहत, सुख या दुःखसे छुटकारे दिलानेकी दृष्टिसे आहारदान, अभयदान सम्यग्ज्ञान दानादि करना त्याग कहलाता है। यही बात (त्याग) जब अपनी शक्ति या सामर्थ्यको दृष्टि में रखते हुए की जाती है तो उसे शक्तितस्त्यागकी संज्ञा प्रदान कर दी जाती है।

(७) शक्तितस्तपः–यह शरीर दुःखका कारण है, नाशमान है, अनित्य एवं अपवित्र हैं इसलिये यथेष्ट भोगोपभोगोंसे इसे परिपुष्ट बनाये रखनेमें लगे रहना ठीक नहीं है। शरीरके अशुचि होनेपर भी वह अनेक गुणों एवं सम्यग्दर्शनादि रत्नोंके संचयनमें सहायक होता हैं ऐसा विचार कर विषय वासनाओंकी आसक्तिसे निवृत्त होते हुए अपनी

से, समीचीन जिनधर्मके मार्गकी प्रभावना करना, मार्ग-प्रभावना कहलाती है। ये क्रियाएँ उसके अंतर्गत हैं।

(१६) प्रवचनवत्सलत्वः-जैसे गाय अपने बछड़े प्रति अकृत्रिम स्नेह रखती है वैसे ही साधर्मी सज्जनोंके प्रति उनको देख, स्नेह भाव रखना प्रवचनवत्सलत्व कहलाता है।

ये उपरिलिखित भावनायें ही शोडपकारण भावनायें कहलाती हैं। इनके भानेसे (चिन्तवनसे) तीर्थकर प्रकृति का आस्रव होता है।

सूत्रः—औद्देशिकाध्यधिरोधपूतिमिश्रस्थापितबलिप्रावर्तिताविष्करणक्रीतप्रामृष्यपरिवर्तकाभिघटोद्भिन्नमालारोहणाच्छेद्यानीशार्थो उद्गमदोषाः ।८।

दातामें पाये जानेवाले जिन अभिप्राय विशेषोंके द्वारा आहारकेलिये जो अनुष्ठानविशेष किये जाते हैं। उनको (अनुष्ठानविशेषोंको) उद्गम दोष कहते हैं। उद्गम दोषोंकी संख्या सोलह है। नाम अलग अलग उनके इस प्रकार हैं:—

१–औद्देशिक उद्गमदोष। २–अध्यधिरोध दोष। ३–पूतिउद्गमदोष। ४–मिश्र उद्गमदोष। ५–स्थापित उद्गम दोष। ६–बलि उद्गमदोष। ७–प्रावर्तित उद्गम दोष। ८–आविष्करण [illegible] उद्गमदोष। १०–प्रामृष्य

१२–अभिघट उद्गमदोष । १३–उद्भिन्न उद्गमदोष
१४–मालारोह उद्गम दोष । १५–अच्छेद्य उद्गमदोष ।
१६–अनिसृष्ट (अनीशार्थ) उद्गम दोष ।

१–औद्देशिक उद्गमदोष :—जो देवता, पाखण्डी, कृपण आदि (लिङ्गी, सर्व, पार्श्वस्थ, साधु निर्ग्रंथ) का निमित्त लेकर उनके उद्देश्यसे, जो भोजन बनाया जाता है वह औद्देशिकदोषविशिष्ट आहार कहलाता है।

२–अध्यधिरोध (साधिक) उद्गम दोषः– अपने लिये चढ़ाये गये बटलोईके जल और चावल में, यती को देखकर, उसके आहारकेलिए बटलोई आदिमें और चावल पानी चढ़ा देना, अथवा जब तक चावल आदि बन कर तैयार हो जाय, जब तक बात बातचीत आदिमें लगा पात्र को रोके रखना अध्यधिरोध दोष कहलाता है।

(३) पूति उद्गमदोषः-प्रासुक द्रव्यको अप्रासुक द्रव्य से मिश्रित कर देना पूति दोष कहलाता है।

[४] मिश्रदोषः–पाखण्डियों और गृहस्थोंके साथ ही साथ सकलचारित्रके धारक संयमी पुरुषको भी आहार देनेके लिये तैय्यार किया गया जो प्रासुक, शुद्ध आहार है वह मिश्र दोषसे दूषित है।

(५) स्थापितदोषः– (न्यस्त दोष) जिस बर्तन (पतीली) में भोजन सामग्री रक्खी है उस बर्तनमें से

दूसरे वर्तनमें भोज्य वस्तुको रख अपने घरमें अथवा दूसरे के घरमें लेजाकर रख देना स्थापित दोष कहलाता हैं।

(६) बलि उद्गमदोष:- यक्ष नागादिकके लिये जो उपहार भेंट किया जाता है उसे बलि कहते हैं। दिये हुए अंशके अतिरिक्त जो बचा हुआ भाग है उसे यतिके लिये देना, बलिदोष कहलाता है। यतिकी पूजाके लिये चंदनगालनादि सावद्य कर्मको करना भी बलिदोषके अंतर्गत माना गया है।

७-प्राभृतकदोष :—जहां दिन, पक्ष, मास या वर्ष में ही नहीं अपितु दिनके अंशमें भी (पौर्वाह्णि अपराह्णिक आदि) दीयमान वस्तुको नियत दिन या दिनांशसे पूर्व या पश्चात् दी जाती है तो वहाँ प्राभृतक नामक दोषका प्रसंग आ जाता है। इसी दोषका नाम आवर्तित भी है।

८-प्राविष्करण (प्रादुष्कार) दोष :—साधुके घर पर आनेपर जो भोजनके वर्तनोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लेजाना, सो संक्रम नामक प्रादुष्कार दोष है। चिक, चटाई, किवाड़, मण्डप आदिको हटा देना, भस्म, जल आदिके द्वारा वर्तनोंको मांजना, चमकाना, प्रदीपादि की सहायतासे उद्योत करना आदि बातें प्रकाशन नामक प्रादुष्कार दोषमें गर्भित हैं।

९-क्रीततरदोष :— संयमी साधुके भिक्षागृह मेंभो-

भोजनालयमें प्रविष्ट होनेपर, मात्र अपने, मात्र दूसरेके या दोनोंके, गोवृषभादि सचित्त, सुवर्ण आदिक अचित्त द्रव्योंकी सहायता से (अर्थात् उन्हें बेचकर) तथा प्रज्ञप्त्यादि विद्या और चेटकादि मंत्रोंकी सहायतासे लाई हुई भोज्य वस्तुओंको देकर आहार कराना क्रीत दोपसे दूषित किया है।

(१०) प्रामृत्य उद्गमदोष :– साधुके चर्याकेलिये निकल जानेपर दाता यदि दूसरेके घर जाकर बड़ी भक्ति से साधुकेलिये वृद्धिसहित या वृद्धिरहित ऋण रूपमें भक्तादि पदार्थोंकी याचना करता है और इस प्रकार ऋण रूपमें लाये हुए पदार्थोंको साधुकेलिये देता है, तो उसमें प्रामृत्य दोपकी उपस्थिति समझ लेना चाहिये।

(११) परिवर्तक या परिवर्तित दोष :– मैं साधुको आहार दूंगा अतः मेरे व्रीहिरूप अन्नको लेकर मुझेशालि रूप चाँवल दे दो, ऐसा कहकर जो साधुके निमित्तसे, या साधुके देनेकेलिये शालिरूप अन्न स्वीकार किया जाता है, या लाया जाता है, वह परावर्त नामक दोपसे युक्त किया है।

(१२) अभिघट दोप :– एक पंक्तिमें स्थित तीन अथवा सात घरोंसे आया हुआ भोज्य द्रव्य, औषधि आदि मुनिकेलिये योग्य या ग्रहणीय है किन्तु इसके

विपरीत लक्षण वाले गृहों से, स्वग्रामसे स्वदेशसे, पर-ग्रामसे, परदेशसे आया हुआ भक्त औषधि आदि अयोग्य हैं मुनिकेलिये ग्रहणीय नहीं हैं। ऐसा आहार अभिघट या अभिहृत दोषसे दूषित होजाता है।

उद्भिन्न दोष — जो दाताओंकेद्वारा साधुओं के लिये मिट्टी चपड़ी आदिसे बंद किये हुए अथवा किसीके नामकी सीलसे बंद हुए घी,शक्कर, गुड लड्डू आदिके वर्तनोंको खोलकर भोज्य द्रव्योंको दिया जाता है उसमें उद्भिन्न दोषका प्रसंग आजाता है। सीलबंद वर्तनोंको खोल उसमें के भोज द्रव्योंको देना उद्भिन्न दोष कहलाता है।

(१४) मालारोहण दोष :- दाता यदिश्रेणी (लकड़ीकी नैसनी) आदिकी सहायतासे घरका दूसरी मंजिल (ऊर्ध्वभाग) पर चढ़कर और वहाँ रक्खे हुए लड्डू शक्कर आदिको लाकर संयत जनोंको देता है तो वह मालारोहणनामक दोपसमन्वित क्रिया है।

(१५) अच्छेद्य (आच्छेद्य) दोष :— साधुओंके भिक्षा (चर्या) सम्बन्धी श्रमको देख जब राजा या राजा सदृश अन्यअधिकारी अथवा प्रसिद्ध चौर आदि लोग कुटुम्बी जनोंको यदि समीचीन रूपसे आये हुए संयमी पुरुषों को विनय पूर्वक भिक्षादान (आहार दान) नहीं दोगे तो

तुम लोगों का सम्पूर्ण द्रव्य जब्त कर लिया जायगा देश से निकाल दिया जायगा इस प्रकारके वचनोंसे डराकर धमकाकर आहार देनेकेलिये तैय्यार करता है, उन्हें उसमें लगाता है, तब आच्छेद्य नामक दोष लगता है।

१३–अनीशार्थ दोष :– व्यक्तात्मा, अव्यक्तात्मा और उभयात्मारूप ईश्वर (भर्ताप्रभु) के द्वारा वारित (रोका या निषिद्ध) किया गया दान देना ईश्वराख्य निषिद्ध दोष है। व्यक्तात्मा, अव्यक्तात्मा एवं उभयात्मा रूप अन्यकेद्वारा जो वस्तुतः ईश्वर नहीं है किन्तु अपने आपको वैसा माने हुए हैं ऐसे अनीश्वरके द्वारा वारित दान को देना अनीश्वराख्य निषिद्ध दोषाक्रान्त क्रिया है।

सूत्र–धात्रीदूतनिमित्ताजीवकवनीपकचिकित्साक्रोधमानमायालोभ पूर्वपश्चात्स्तुतिविद्यामंत्रचूर्णमूलकर्माण्युत्पादनदोषाः ॥३॥

यति (साधु) की आहार, औषधि, वसति, उपकरण आदि प्रमुख देय वस्तुके विषयमें धात्री दूत आदि के रूप में क्रियायें (अनुष्ठान विशेष) होती हैं उन्हें उत्पादन दोष कहते हैं। ऐसे दोषोंकी संख्या सोलह है। दोषोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं :–

१- धात्री उत्पादन दोष २- दूत–उत्पादन दोष ३- निमित्त उत्पादन दोष ४- आजीवक उत्पादन दोष ५- वनीपक उत्पादन दोष ६- चिकित्सा उत्पादन दोष

(७) क्रोध उत्पादन दोष (८) मान उत्पादन दोष(९)माया उत्पादन दोष (१०) लोभ उत्पादन दोष (११) पूर्व स्तुति उत्पादन दोष (१२) पश्चात् स्तुति उत्पादन दोष (१३) विद्या उत्पादन दोष (१४) मंत्र उत्पादन दोष (१५) चूर्ण योग उत्पादन दोष (१६) मूल कर्म उत्पादन दोष।

(१) धात्री उत्पादन दोषः- जो बालकको संतुष्ट रखती है या उसे धारण किये रहती है उसे धात्री कहते हैं पांच प्रकारकी धात्रियों [मार्जनधात्री - मण्डनधात्री- क्रीडनधात्री- क्षीरधात्री- अम्बधात्री] की क्रिया अथवा कर्मसे आहारादिकी संयोजना करा लेना, दाताको आहार देने केलिये पटा लेना [तैयार कर लेना] धात्री दोष है।

२ दूत नामक उत्पादन दोषः-- अपने ग्रामसे दूसरे ग्रामको अपने देशसे दूसरे देशको जलमें नाव आदिककेद्वारा जाते हुए, स्थलपर और आकाशमें गमन करते हुए, साधुसे कोई गृहस्थ विनयपूर्वक कहता है "हे पूज्य। कृपया मेरा यह संदेश उस ग्राम या उस देशमें लेते जाइये,, और वह साधु परग्राम या परदेशमें स्थित उसके सम्बन्धीको वचनोंको कह देता है। वह परग्राम स्थित या परदेश स्थितसम्बन्धी [जिसको लाकर समाचार सुनाये है) समाचार श्रवणसे प्रसन्न होता हुआ वदलेमें साधुकेलिये दान आदिक देता है और उसे दानको साधु

ग्रहण करता है, तो उसे दूतकर्म नामके उत्पादन दोष का भागी होना होगा।

३ निमित्त उत्पादन दोषः– व्यंजन अंग स्वर आदि आठ प्रकारके निमित्तोंसे मिला [आहारादि) निमित्त नामक उत्पादन दोष है।

४ आजीवक उत्पादन दोष :— जाति, कुल, शिल्प कर्म, तपकर्म ईश्वरत्वका कथन कर दाताको आहार देने केलिये तत्पर करना आजीवकनामका उत्पादन दोष है।

५ वनीपक वचन नामक उत्पादन दोषः- कुत्ते, कृपण अतिथि, ब्राह्मण, पाखंडि, श्रमण, काक आदिक को जो दान दिया जाता है उससे, हे महाराज! पुण्य होता है या नहीं ? दाताके द्वारा ऐसा पूछे जानेपर उत्तर देनाकि पुण्य होता है,, और इस प्रकार दान देनेवालेके यहाँ उसके प्रति अनुकूल वचन कहते हुए यदि मुनि या पात्र आहार ग्रहण करता है तो वह वनीपक नामके उत्पादन दोषका भागी होगा।

६ चिकित्सा नामक उत्पादन दोषः– आठ प्रकार की चिकित्सा शास्त्रके द्वारा दाताका उपकार कर उसके यहाँ आहार आदिकको जो ग्रहण करता है वह चिकित्सा नामक दोषका भागी होता है।

७ क्रोध नामक उत्पादन दोषः– क्रोधको दाताके

प्रति करके पात्र यदि अपने आहारकी विधि बनाता है तो वह कोध दोपका दोषी होता है।

८ मान नामक उत्पादन दोपः- मान घमंड या गर्व को करके जो अपनी भिक्षाका प्रबन्ध करता है ऐसा पात्र मान दोपका भाजन होता है।

९ माया नामक उत्पादन दोपः– कुटिल भावोंको करके अगर पात्र अपने आहारका प्रबन्ध दातासे कराता है तो वह माया दोपका पात्र है।

१० लोभ नामक उत्पादन दोपः-- लालच या कांक्षाको प्रदर्शित कर अगर अपने आहारकेलिये पात्रको तैय्यार करता है सो वह लोभ दोपका पात्र होगा।

११ पूर्वसंस्तुति नामक उत्पादन दोपः - दान ग्रहण करनेके पूर्व [पहिले] ही दान देनेवाला जो गृहपति है उसकी प्रशंसा करना" तुम बड़े भारी दानपति हो तुम्हारी दानके क्षेत्रमें सर्वत्र कीर्ति छाई हुई है इस प्रकारके वचनोंको बोल दाताको आहार देनेकेलिये प्रेरित करना अथवा पहिले तुमने बहुतसे दान दिये हैं, अब इस समय क्यों कर दानकी विधि भूल रहे हो ऐसा कह कर स्वआहार केलिये प्रेरित करना पूर्व संस्तुति दोप है।

१२ पश्चात्संस्तुतिः दाताके यहाँ दान, आहारादिक को ग्रहण करके बादमें उसकी तारीफ करना,

तुम्हारा नाम तो दान देनेमें बजा हुआ है तुम्हारी कीर्ति सब ओर छाई हुई है, बड़े अच्छे धर्म परायण व्यक्ति हो इस तरहके वचन दाताकेलिये कहना पात्रकेलिये दोषके कारण है।

[१३] विद्यानाम उत्पादन दोषः- जिसकी साधना की जा रही है यह ऐसी विद्या मैं तुम्हें दूंगा, इस विद्यासे तुम्हारा ऐसा काम बन जायेगा इस प्रकार विद्याके माहात्म्यसे जो जिन्दगी बसर करता है वह पात्र विद्या नामक दोषका भागी होता है।

[१४] मंत्रोत्पादन दोषः- मंत्रके पढनेसे सिद्धि होती है सो ऐसा मंत्र मैं तुम्हें दूंगा इस प्रकार उस मंत्र के माहात्म्यसे जो अपना पेट भरनेकी विधि करता है वह मंत्रोत्पादन दोषका पत्र होता है।

[१५] चूर्ण नामक उत्पादन दोषः- नेत्रोंको निर्मल करने वाला जो अंजन द्रव्यरज तिलक आदिकेद्वारा सजाने में सहायक होने वाला भूषण द्रव्य रज तथा शरीरको कान्ति प्रदान करने वाला जो गात्रचूर्ण है इनसे अपने आहारकी योजना जो करता है, दाताको आहार देनेके लिये तैयार करता है सो चूर्णदोषका भागी होता है

[१६] मूलकर्म दोष वश नामक उत्पादन दोष-जो वश में नहीं है उनको वशमें करना जो बिछुड़े हुये हैं उनको

मिलादेना मूल कर्म कहलाता है। इस मूल कर्मकी सहायता से जो भोजनादिकके देनेके लिये दाताको प्रेरित करना सो मूल कर्म दोष है। इसीका दूसरा नाम वश दोष है।

सूत्र—सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्र ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतव कापिष्टशुक्र-महाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युताः स्वर्गाः ४।

उर्ध्वलोकमें ज्योतिष्क विमानोंके ऊपर सोलह स्वर्ग पाये जाते हैं। स्वर्गोंके नाम अलग२ इस प्रकार हैं।

[१] सौधर्मस्वर्ग [२] ऐशान स्वर्ग [३] सानत्कुमार स्वर्ग [४] माहेन्द्रस्वर्ग [५] ब्रह्म स्वर्ग [] ब्रह्मोत्तर स्वर्ग [७] लान्तवस्वर्ग [८] कापिष्टस्वर्ग [६] शुक्रस्वर्ग [१०] महाशुक्रस्वर्ग [११] शतार स्वर्ग (१२) सहस्रार स्वर्ग [१३]आनत स्वर्ग [१४] प्राणत स्वर्ग [१५] आरण स्वर्ग [१६] अच्युत स्वर्ग।

सूत्र—तद्वासित्वात्कल्पोपन्नाः।४।

अर्थः—जिनमें इन्द्र आदिककी कल्पना की जाती है ऐसे सोलह स्वर्गों [जिनके कि नाम पूर्व सूत्रमें लिखे जा चुके हैं] को कल्प कहते हैं। तथा इन कल्पोंमें जो देव पैदा होते हैं वे कल्पोपन्न कहलाते हैं। जिस स्वर्गमें जो देव पैदा होता है या वास करता है, वह उस स्वर्गके नाम वाला होता है इस प्रकार कल्पोपन्न देवोंके स्वर्ग भेदके कारण, सोलह भेद होते हैं। नाम उनके ये हैं :—

[१] सौधर्म देव कल्पोपन्न [२] ऐशान देव कल्पोपन्न ३ - सानत्कुमार कल्पोपन्न ४- माहेन्द्र कल्पोपन्न ५- ब्रह्म कल्पोपन्न ६-ब्रह्मोत्तर कल्पोपन्न ७-लान्तव कल्पोपन्न ८- कापिष्ट कल्पोपन्न ९- शुक्र कल्पोपन्न १०-महाशुक्र कल्पोपन्न [११) सतार कल्पोपन्न [१२] सहस्त्रार कल्पोपन्न (१३] आनत कल्पोपपन्न [१४) प्राणत कल्पोपपन्न (१५) आरण कल्पोपपन्न (१६) अच्युत कल्पोपपन्न

सूत्र–अग्न्याभसूर्याभिचन्द्राभसत्याभश्रेयस्कर क्षेमंकर वृषभेष्टकामधर-निर्माण रजोदिगन्तरक्षितात्मरक्षित सर्वरक्षितमरुद्वस्वश्वविश्वादिगन्तरकोणवासिनो लौकान्ति देवाः ॥६॥

जिनके लोक (संसार) का अन्त आगया है अर्थात् जो अगले भवमें मनुष्य पर्याय पाकर मुक्ति प्राप्त करने वाले हैं ऐसे लौकान्तिक देव ब्रह्म स्वर्गके अंत में रहा करते हैं। उन अन्तरगत लौकान्तिक देवोंकी संख्या सोलह है जो कि दिशाविदिशाओं के अंतर कोणों में दो दो कुलों के रूपमें रहते हैं। नाम उन सोलह के अलग अलग ये हैं :–

(१) अग्न्याभलौकान्तिक देव (२) सूर्याभि लौकान्तिक देव (३) चन्द्राभ लौकान्तिक देव (४) सत्याभ लौकान्तिक देव (५) श्रेयस्कर लौकान्तिकदेव (६) क्षेमंकर लौकान्तिक देव (७) वृषभेष्ट लौकान्तिकदेव (८) कामधर

लौकान्तिकदेव (६) निर्माणरज लौकान्तिकदेव (१०) दिगन्त रचित लौकान्तिकदेव (११) आत्मरचित लौकान्तिकदेव (१२) मर्व रचित लौकान्तिकदेव (१३) मरुत लौकान्तिकदेव (१४) वसु लौकान्तिकदेव (१५) अश्व लौकान्तिकदेव (१६) विश्व लौकान्तिकदेव।

सूत्र– ब्राह्मीसुन्दरीकौशल्यासीताकुन्तीद्रौपदीराजुलचंदनासुभद्राशिवदेवी चेलिनीपद्मावतीमृगावती सुलमादमयन्तीप्रभावत्य : पति व्रतपरायणा : प्रसिद्धा : सत्य : ॥७॥

पतिव्रत धर्म के परिपालन में सदा तत्पर रहने वाली, ख्यातिप्राप्त, शीलधर्मके पालन में जीवनकी भी बाजी लगा देनेवाली सोलह सतियाँ हो गई हैं। नाम उन सतियों के इस प्रकार हैं :–

(१) सती ब्राह्मी (२) सती सुन्दरी (३) सती कौशल्या (४) सती सीता ५ सती कुन्ती ६ सती द्रौपदी ७ सती राजुल ८ सती चंदना ९ सती सुभद्रा १० सती शिवदेवी ११ सती चेलिनी १२ सती पद्मावती १३ सती मृगावती १४ सती सुलसा १५ सती दमयन्ती १६ सती प्रभावती।

१ सती ब्राह्मी :– भगवान आदिनाथ की सुपुत्री इसने आजीवन शीलव्रत का पालन किया और अपने आपको विवाहसे विमुख रक्खा।

२ सती सुन्दरी :- कर्मभूमी की आदिमें आजीविका के साधनोंका उपदेश देनेवाले भगवान आदिनाथ की दूसरी पुत्रीका नाम सुन्दरी था। यह भी विवाह से विमुख रहती हुः शील व्रतके परिपालनमें लगी रहीं।

३ सती कौशल्या :- मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र की मां एवं महाराजा दशरथ की पत्नीका नाम कौशल्या था। इनका जीवन गृहस्थ नारियोंके लिये आदर्श है।

४ सती सीता :- पतिका सुख ही नारीके लिये व्यवहारमें योग्य सुख होना है। नारी कामिनी ही नहीं अपि तु जीवन संगनी होती है। वह पतिके सुख दुःखमें छायाके समान साथ रहती है ऐसा करने में चाहे उसे जितना चाहे कष्ट झेलना पड़े वह पीछे नहीं हटती। इस आदर्श को भातीय नारियोंके समक्ष रखने वाली, श्री रामचन्द्रजी पत्नी, राजा जनककी पुत्री सती सीता थी।

५ कुन्ती- महाराजा पाण्डुकी धर्मपत्नी, युधिष्टर भीम और अर्जुनकी पूजनीया मां का नाम कुन्ती था। सोलह सतियोंमें एक ये भी हैं।

६ सती द्रौपदीः- महाराजा द्रुपद की कन्या का नाम द्रौपदी था। स्वयंवर विधिसे इनका विवाह पांच पाण्डवोंमें से अर्जुन नामके पाण्डव से हुआ था।

७ सतीराजुलः- भोजवंशी राजा उग्रसेनकी पुत्री राजुलने

जलती हुई अग्निका ढेर। ये सोलह स्वप्न तीर्थंकर की माता को आते हैं।

सूत्र अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरण संज्वलनक्रोधमानमाया लोभाः कषायाः ।६।

आत्माके परिणामोंको जो विकृत करे उनका घात कर डाले उसे कषाय कहते हैं। कषाय सोलह होती हैं। नाम अलग अलग ये हैं :-

१ अनंतानुबंधी क्रोध कषाय (२) अनंतानुबंधी मान कषाय ३ अनंतानुबंधी माया कषाय ४ अनंतानुबंधी लोभ कषाय ५ अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध कषाय ६ अप्रत्याख्या नावरणी क्रोध कषाय ६ अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध कषाय ७ अप्रत्याख्यानावरणी माया कषाय ८ अप्रत्याख्याना वरणी लोभ कषाय

९ प्रत्याख्यानावरणी क्रोध कषाय १० प्रत्याख्यानावरणी मान कषाय ११ प्रत्याख्यानावरणीमाया कषाय १२ प्रत्या-ख्यानावरणी लोभ कषाय १३ संज्वलन क्रोध कषाय १४ संज्वलन मान कषाय १५ संज्वलन माया कषाय १६ संज्व-लन लोभ कषाय।

१ अनन्त संसारका कारण भूत जो मिथ्यादर्शन है उसके बंधकी कारण भूत कषायका नाम अनंतानुबन्धी कषाय है। इस कषाय सम्बन्धी क्रोध मान माया लोभ रूप चार

कषायें हैं।

अनंतानुबन्धी क्रोधः–अमर्ष क्रूर परिणाम जो संसार के कारण भूत अनंतमिथ्यादर्शन का बंध करे।

अनंतानुबन्धी मानः– जात्यादिके घमण्डके कारण जो, संसारके भ्रमण का कारण भूत तीव्र मिथ्यादर्शनका बंध होता है उसे अनंतानुबन्धी मान कहते हैं।

३ अनंतानुबन्धी मायाः - ऐसे तीव्र कुटिल परिणाम जो संसारके परिभ्रमणके कारण भूत अनंत मिथ्यात्वके बंध में सहायक हो।

४ अनंतानुबन्धी लोभः- तीव्र लोभ का कृपणताके परिणाम हैं जो अनंतमिथ्यात्वके बंधहोते हैं उन परिणामोंको अनंतानुबन्धी लोभ कहते हैं।

जिस उदयसे देशविरति नामक संयमको भी प्राणी धारण न करसके उस कषाय का नाम अप्रत्याख्यानावरण है। इसके भी चार भेद हैं क्रोध मान माया लोभः–

(५) अप्रत्याख्यानावरणीक्रोधः— ऐसेक्रूर परि–णाम जिनसे थोडा सा भी संयमासंयम रूप चारित्र न धारण किया जा सके, वे सब अप्रत्याख्यानावरणी क्रोधमें गर्भित हैं। (३) अप्रत्याख्यानावरणी मानः–– जात्यादि संम्बंधी ऐसे अभिमान पूर्ण परिणाम जिनमें देश संयम धारण करनेमें बाधा हो वे सब अप्रत्याख्यानावरणी मान

गर्भित है

७ अप्रत्याख्यानावरणी मायाः—मन वचन कायकी कुटिलता युक्त ऐसे परिणाम जिनसे देशसंयमके पालनमें प्रवृत्ति न हो वे सब अप्रत्याख्यानावरणी मायामें गर्भित है।

८ अप्रत्याख्यानावरणी लोभः—लालच या कृपणता के ऐसे परिणाम जिनसे प्राणी श्रावकके व्रतोंके परिपालनकी ओर प्रवृत्त न हो।

जिसके उदयसे प्राणी सकल संयमको धारण करनेमें समर्थ न हो सके उस कषायका नाम प्रत्याख्यानावरणी कषाय है। उसके भी चार भेद हैं: क्रोध मान माया लोभ—

९ प्रत्याख्यानावरणी लोभःऐसेकर परिणाम जिनसे संकलनसंयम धारण करनेमें प्राणी समर्थ न हो उन परिणामों का नाम अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध है।

१० प्रत्याख्यानावरणी मानः—सज्जाति कुल, आदि के गर्व-सम्बन्धी ऐसे मान रूप परिणाम हों जिनसे सकल-संयम है धारण करनेमें प्राणी की प्रवृत्ति नहो।

११ प्रत्याख्यानावरणी मायाः- मन वचन, कायकी ऐसी कुटिला प्रवृत्ति जिससे प्राणी मुनि-आचरण धारण की ओर मन न करसके। अर्थात् जिससे मुनिव्रत धारण करनेमें

१२ प्रत्याख्यानावरणी लोभः–लालच और कृपणता आदिके ऐसे परिणाम हों जिससे प्राणी मुनिचारित्र धारण करनेमें समर्थ न हो।

जो संयम धारण करनेमें विघ्न पैदा न करते हुए तथा धारण किये हुए सकल संयमादिके साथ २ रहते हुए संयम परिपालनमें ज्वलन संताप या चंचलताको पैदा करे ऐसी कषाय का नाम संज्वलन कषाय है। इसके भी चार भेद हैं –क्रोध मान माया लोभ (१३) संज्वलन क्रोधः- ऐसे हल्के या क्षणिक आवेशमय परिणाम है जो धारण किये हुए संयममें कुछ चंचलता पैदा कर दे उन परिणामोंका नाम संज्वलन क्रोध है। सयम और संज्वलन क्रोध रूप परिणाम साथ २ पाये जाते हैं।

(१४) संज्वलन मानः– कुल, जाति संबंधी ऐसे गर्व युक्त परिणाम जो संयमके साथ रहते हुए समय व समय (यदाकदा) संयममें चञ्चलता पैदा करदे

(१५) संज्वलन माया :– मन वचन कायकी ऐसी कुटिल प्रकृत्ति जो संमयके साथ वर्तमान रहते हुए जब उसमें चंचलता पैदा करदे।

(१६) संज्वलन लोभः– लालच या कृपणताके ऐसे हल्के भाव होना जो संयमधारणके साथ रहते हुए जब कभी उसमें चंचलता पैदा कर देवें

सूत्रः- चित्रावज्रावैडूर्यलोहितामसारकल्पागोमेदाप्रवालाज्योतिरसांजनांजनमूलिकाङ्कास्फटिकाचंदनासर्वार्थकावकुलाशैलामहस्त्रप्रमिताःखरपृथ्वीभागाः॥१०॥

पहिली रत्नप्रभा नामकी नरक भूमि के तीन भाग हैं। उसमें से सबसे ऊपरके भागका नाम खर भाग है। इस खर नामक प्रथ्वीके हजार २ योजन वाले सोलह भाग हैं। भागोंके नाम अलग अलग इस प्रकार से हैं :-

(१) चित्रानामक खरपृथ्वीभाग (२) वज्रा नामक खर पृथ्वी भाग (३) वैडूर्यनामक खर पृथ्वी भाग (४) लोहिताख्या खर पृथ्वी भाग (५) मसारकल्पाख्य खर पृथ्वीभाग (६) गोमेदाख्य खर पृथ्वीभाग (७) प्रवालाख्य खर पृथ्वीभाग (८) ज्योतिरसाख्य खर पृथ्वी भाग (९) अंजनाख्य खर पृथ्वीभाग (१०) अंजनमूलिकाख्य खर पृथ्वीभाग (११) अंकाख्य खर पृथ्वीभाग (१२) स्फटिकाख्य खर पृथ्वीभाग (१३) चंदनाख्य खर पृथ्वीभाग (१४ सर्वार्थका खर पृथ्वीभाग १५ वकुलाख्य खर पृथ्वीभाग १६ शैलाख्य खर पृथ्वीभाग :-

सूत्रः— उत्पलगुल्मानलिन्युत्पलिकोत्पलोज्ज्वलाभृंगाभृंगनिभाकज्जलाकज्जलप्रभाश्रीकान्ता श्रीमहिताश्रीनिलयानलिनीनलिन गुल्मीकुमुदाकुमुदप्रभा नंदनवनवापिकाः ॥११॥

नंदनवनमें स्थित सोलह वापिकायें। बावडियाँ।

हैं। वापिकाओं के अलग अलग नाम ये हैं :-

१ उत्पन्नगुल्मा नामक नंदनवनवापिका २ नलिनी नामक नंदनवनवापिका । (३) उत्पलाख्यनंदन वन वापिका । (४) उत्पलोज्वलाख्य नंदनवन वापिका। (५] भृंगाख्यनंदन वन वापिका। (६) भृंगनिभानामक नंदन वन वापिका। (७) कज्जलाख्या नंदनवन वापिका। (८)कज्जलप्रभाख्य नंदनवनवापिका (६)श्रीभूता नाम नंदन वन वापिका (१०)श्रीकान्तानामक नंदन वन वापिका (११)श्रीमहितानामक नंदन वन वापिका (१२)श्रीनिलया नामक नंदन वन वापिका १६ नलिनी नामक नंदन वन वापिका (१४)नलिनगुल्मी नंदन वनवापिका (१५)कुमुदाख्य नंदन वन वापिका (१३)कुमुदप्रभा नामक नंदन वनवापिका

सूत्रः—कनकनकप्रभकनकराजध्वजकनकपुंगवनलिननलिनप्रभनलिन राजनलिनध्वजनलिनपुंगवपद्मपद्मप्रभपद्मराजपद्मध्वजपद्मपुंगव-महापद्मा भाव्युत्सर्पिणिकुलकराः ।१६।

अर्थ-अवसर्पिणीके अवसानके अनन्तर उत्सर्पिणी का उदय होगा। उत्सर्पिणी कालके दूसरे आरेके जब हजार वर्ष रहेंगे तब सोलह कुलकर होंगे। कुलकरोंके नामों की नामावलि इस प्रकार है:—

(१)कनकाख्य कुलकर (२) कनप्रभ नामक कुलकर (३)कनकराज नामक कुलकर [४ कनकध्वज नामक कुलकर

५ कनकपुंगव नामक कुलकर ६ नलिन नामक कुलकर ७ नलिनप्रभ नामक कुलकर ८ नलिनराज नामक कुलकर ९ नलिनध्वज नामक कुलकर १० नलिनपुंगव नामक कुलकर ११ पद्मनामक कुलकर १२ पद्मप्रभ नामक कुलकर १३ पद्मराज नामक कुलकर १४ पद्मध्वज नामक कुलकर १५ पद्मपुंगव नामक कुलकर १६ महापद्म नामक कुलकर

सूत्रः—मिथ्यात्वहुंडकसंस्थानासंप्राप्तासृपाटिकासंहननपुंवेदैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियस्थावरातपसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणनरकद्विक नरकायूंषि मिथ्यात्व गुणस्थाने बंध व्युच्छिन्नाःप्रकृतयः॥१३॥

अर्थ.– मिथ्यात्व नामके गुणस्थानमें बंधसे जिन की व्युच्छित्ति होती है अर्थात आगे गुणस्थानोंके जो सोलह प्रकृति बंधसे व्युच्छिन्न होती हैं उनके नाम ये हैं १ मिथ्यात्व प्रकृति २ हुंडक संस्थान ३ असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन ४ नपुंसकवेद ५ एकेन्द्रिय कर्म प्रकृति ६ द्वीन्द्रिय कर्म प्रकृति ७ त्रीन्द्रिय कर्म प्रकृति । ८ चतुरिन्द्रिय कर्म प्रकृति । ९ स्थावर कर्म प्रकृति । १० आताप कर्म प्रकृति । ११ सूक्ष्म कर्म प्रकृति । १२ अपर्याप्त कर्म प्रकृति । १३ साधारण कर्म प्रकृति । १४ नरकगति कर्म प्रकृति । १५ नरकगत्यानुपूर्वी कर्म प्रकृति । १६ नरकायु कर्म प्रकृति । ये वे सोलह कर्म प्रकृतियां हैं जिनका मिथ्यात्व गुणस्थानके अतिरिक्त अन्य सासादनादि गुणस्थानों

में बंध नही होता है ।

सूत्र—ज्ञानावरणान्तरायसर्वप्रकृतिचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणयशः कीर्युच्चैर्गोत्राणि सूक्ष्म साम्परायेबंधेन व्युच्छिन्नाःप्रकृतयः ।१४।

सूक्ष्म साम्पराय नामक दसवें गुणस्थान में बंध से व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियां होती हैं । सोलह प्रकृतियोंके नाम ये हैं :– (१) मतिज्ञानावरण कर्म प्रकृति (२) श्रुतज्ञानावरण कर्म प्रकृति(६) अवधिज्ञानावरण कर्म प्रकृति ४ मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म प्रकृति ५ केवलज्ञानावरण कर्म प्रकृति ६ दानान्तराय कर्म प्रकृति ७ लाभान्तराय कर्म प्रकृति ८ भोगान्तराय कर्म प्रकृति ९ उपभोगान्तराय कर्म प्रकृति १० वीर्यान्तराय कर्म प्रकृति ११ चक्षुर्दर्शनावरण कर्म प्रकृति १२ अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म प्रकृति १३ अवधि दर्शनावरण कर्म प्रकृति १४ केवल दर्शनावरण कर्म प्रकृति १५ यशःकीर्ति कर्म प्रकृति १६ उच्चगोत्र कर्म प्रकृति ।

ये उन सोलह प्रकृतियोंके नाम हैं जो सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे आगे के गुणस्थानोंमें बंधको प्राप्त नहीं होती ।

सूत्र—निद्राप्रचलाज्ञानावरणान्तरायदशकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि क्षीणमोहे उदयेन ।१५।

क्षीणमोह नमक गुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होने वाली कर्म प्रकृतियोंकी संख्या सोलह है । सोलह प्रकृतियो

रिक मिश्र काय योग [११] वैक्रियक काय योग [१२] वैक्रयिक मिश्र काय योग [१३ आहारक काय योग [१४] आहारक मिश्र काय योग [१५] कार्माण काय योग [१६] अयोग योग मार्गणा।

सूत्र—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायु नित्येतर निगोदाः प्रत्येक वनस्पति विकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञि पंचेन्द्रिया जीवसमासाः ॥१८॥

अर्थः- समस्त सत्त्वोंका समावेश जिनमें किया जा सके ऐसे सोलह जीव समास होते हैं। जीव समासोंके नाम ये हैं :-

[१] बादर पृथ्वी जीवसमास [२] सूक्ष्म पृथ्वी जीव समास [३] बादर अप (जल) जीवसमास [४] सूक्ष्म अप जीव समास [५] बादर तेज (अग्नि) जीवसमास [६] सूक्ष्म तेज जीवसमास [७] बादर वायु जीवसमास (८) सूक्ष्म वायु जीवसमास (९) नित्यनिगोद जीवसमास १० इतरनिगोद जीवसमास ११ प्रत्येक वनस्पति जीवसमास १२ दोइन्द्रिय जीवसमास १३ त्रीन्द्रिय जीवसमास १४ चतुरिन्द्रिय जीवसमास १५ संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमास १६ असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमास।

सूत्रः—पृथ्व्यप्तेजो वायुवनस्पतिविकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ताश्च ॥१६॥

अर्थः पूर्वसूत्रमें जो सोलह संख्या वाले जीव समास

सोलह जीव समासों के अलग अलग नाम ये हैं:-

१ पृथ्वी अपर्याप्त जीवसमास २ पृथ्वी पर्याप्त जीवसमास ३ अप अपर्याप्त जीवसमास ४ अप पर्याप्त जीवसमास ५ तेज पर्याप्त जीवसमास ६ तेज अपर्याप्त जीवसमास ७ वायु पर्याप्त जीवसमास ८ वायु अपर्याप्त जीवसमास ९ वनस्पति पर्याप्त जीवसमास १० वनस्पति अर्याप्त जीवसमास ११ विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवसमास १२ विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमास १३ संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमास १४ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवसमास १५ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमास १६ असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमास।

सूत्रः— अस्तिनास्तिनित्यानित्यैकानेकभेदाभेदभव्याभव्यापरमाचेतनामूर्तानेकप्रदेशशुद्धोपचरितस्वभावा धर्मद्रव्यस्य स्वभावाः(२०)

अर्थः- धर्मद्रव्यके जो कि जीव और पुद्गलको गमनकरनेमें सहायक होता है, सोलह स्वभाव होते हैं स्वभावों के अलग अलग नाम इस प्रकार- हैं

१ अस्तिनामक धर्मद्रव्य स्वभाव २ नास्तिनामक धर्मद्रव्य स्वभाव ३ नित्यनामक धर्मद्रव्य स्वभाव ४ अनित्य नामक धर्म द्रव्य स्वभाव ५ एकनामक- धर्मद्रव्य स्वभाव६ अनेक नामक धर्मद्रव्य स्वभाव ७ भेदनामक धर्म द्रव्य स्वभाव ८ अभेदनामक धर्मद्रव्य स्वभाव ९ भव्य

सूत्रः—ज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्पर्शरसगंधवर्णगतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतु-
चेतनाचेतनमूर्तामूर्तत्वानि द्रव्याणां विशेषगुणाः ।२३।

अर्थः— छह द्रव्योंमें पाये जानेवाले सोलह विशेष गुण होते हैं । उन विशेष गुणोंके नाम इस प्रकार से हैं ।

१ ज्ञानाख्य विशेषगुण २ दर्शनाख्य विशेषगुण ३ सुखाख्य विशेषगुण ४ वीर्याख्य विशेषगुण ५ स्पर्शाख्य विशेषगुण ६ रसाख्य विशेषगुण ७ गंधनामक विशेषगुण ८ वर्ण नामक विशेषगुण ९ गतिहेतुत्वनामक विशेष गुण १० स्थितिहेतुत्वनामक विशेष गुण ११ अवगाहन हेतुत्व नामक विशेष गुण १२ वर्तनाहेतुत्व नामक विशेषगुण १३ चेतनत्वनामक विशेषगुण १४ अचेतनत्व नामक विशेष गुण १५ मूर्तत्वनामक विशेषगुण १६ अमूर्तत्व नामक विशेष गुण ।

उपरिलिखित सोलहमें से शुरूके चार विशेष गुणों [ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख] का सम्बन्ध जीवद्रव्यसे है । इसके आगेके चार विशेष गुणोंका [स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, का] सम्बन्ध पुद्गल द्रव्य एवं संसारी जीवद्रव्य से है । गतिहेतुत्वगुणका सम्बन्ध धर्मद्रव्यसे, स्थितिहेतुत्वगुण का सम्बन्ध अधर्मद्रव्यसे, अवगाहनहेतुत्वगुण का सम्बध आकाशद्रव्यसे तथा वर्तनाहेतुत्वगुणका सम्बन्ध ‥ल द्रव्यसे है । अर्थात् उल्लिखित गुण उनके आगे लिखे

गये द्रव्योंके विशेषगुण हैं। चेतनत्वगुणका सम्बन्ध जीवसे है अचेतनत्वगुणका सम्बन्ध जीव व्यतिरिक्त अन्य द्रव्योंसे है। मूर्तत्वगुणका संबंध पुद्गलद्रव्य एवं संसारी, कर्ममलीमससे मलिन जीवद्रव्यसे। अमूर्तत्व गुण का संबन्ध कर्म मलसे मुक्त, शुद्ध परमात्मपदमें स्थित सिद्ध आत्मद्रव्योंसे, धर्मद्रव्यसे, अधर्मद्रव्यसे, आकाशद्रव्य एवं काल द्रव्यसे है। इस प्रकारसे उपरिलिखित विशेष द्रव्यों में पाये जाते हैं।

सूत्र:-अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ सानुस्वार विसर्गा स्वराः। ॥८४॥

अर्थः-स्वर कहने से उन वर्णों का ग्रहण होता जिनके कि उच्चारण में दूसरे वर्णोंकी सहायता नहीं लेनी पड़ती। ऐसे वर्ण सोलह हैं। वे अलग अलग इस तरह लिखे जा सकते हैं:—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

सुत्रः— गुणपरिणामश्रद्धानवात्सल्यभक्तियात्रलाभसंधानतपःपूजाधर्माव्युच्छित्तिसमाधिर्तीर्थकराज्ञा संयम सहायतादाननिर्विचिकित्सा प्रभावना कार्यपूर्णता वैयावृत्यगुणाः—

अर्थः- आचार्य, उपाध्याय आदि दश प्रकारके उत्तम पात्रों, श्रावकादि रूप मध्यमपात्रों तथा अन्यपात्रों के शारीरिक पीड़ा रूप ` ` आर्तरौद्र परिणाम रूप

जो परिस्पन्दात्मक क्रिया या हलचल होती है. उसे क्रिया संज्ञा प्रदान की जाती है ! क्रियाएँ सोलह प्रकार की होती हैं। उनके नाम ये हैं:-

१ प्रयोग क्रिया २ बंधाभाव क्रिया ३ छेदक्रिया ४ अभिघात क्रिया ५ अवगाहन क्रिया ६ गुरुगति क्रिया ७ लघुगति क्रिया ८ संचारगति क्रिया ९ संयोग गति क्रिया १० स्वभावगति क्रिया ११ तिर्यग्गति १२ उर्ध्व गति १३ दिग्न्तर गति १४ निम्य भ्रमण गति १५ अनियतयोगगति १६ अनियत गति ।

प्रयोगगति क्रिया :— बाण चक्र आदिकी पुरुष प्रयोग द्वारा जो गति होती है उसे प्रयोगगति या क्रिया कहते हैं।

२ बंधाभाव गति । क्रिया । :— बंधके कारण के नष्ट हो जानेसे एरंड या तेंदूके बीजके समान जो गति होती है उसका नाम बंधाभाव गति है।

३ छेद गति क्रिया । मृदंगभेरी शंखादिके शब्द पुद्गलोंकी जैसी गतिका नाम छेद गति है।

४ अभिघात गति । क्रिया । :— लाखके गोले, गेंद लकडीके गोलेकी गतिका नाम अभिघात गति है।

५ अवगाहन गति क्रिया :— नाँव, जहाज आदि की जैसी गति को अवगाहन गति कहते हैं।

(६)गुरु गति (क्रिया):— पाषाण या लोहपिण्डकी गति जैसी गति (क्रिया) का नाम गुरुगति है
(७) लघुगति (क्रिया) :— तूमड़ी अकौआ आदिके रेशेकी गतिके समान गतिका नाम लघुगति है।
(८) संचार गति (क्रिया):— शराब, सौवीरक आदि की गति के समान गतिका नाम संचार गति है।
(६) संयोग गति (क्रिया) मेघ, मूशल आदि की गतिजैसी गति संयोग गति कहलाती है।
(१०) स्वभाव गतिः— वायु, आग, परमाणु आदि की गति स्वभावगतिके नामसे पुकारी जाती है। आगे के छह भेद वस्तुतः स्वभावगतिके ही विशेष हैं।
(११) तिर्यग्गतिः— हवाकी बिना किसी निमित्त के होने वाली गति तिर्यग्गति कहलाती है।
(१२) अनियत योग गतिः— भस्त्र (धौंकनी) आदिक के निमित्त तिर्यग्गति वाली वायु अनियत गति वाली हो जाती है
(१३) उर्ध्वगतिः— अग्नि की गति, जो बिना किसी निमित्त के होती है उसे उर्ध्वगति कहते हैं। सिद्धपद प्राप्त करने वाले जीवों के उर्ध्वगति ही होती है।
(१४) दिगन्तर गतिः— कारण विशेष के संयोग होने पर अग्निकी उर्ध्वगतिके अतिरिक्त अन्य दिशाओंमें गति

होती है उसे दिगन्तर गति कहते हैं ।

(१५) नित्यभ्रमण गतिः– मनुष्य लोक (अढ़ाई द्वीप) में पायेजाने वाले ज्योतिष्कों की गति का नाम नित्य भ्रमण गति है ।

(१६) अनियत गतिः– पुद्गल परमाणु की गति अनियत गति ही होती है । उसकी अन्य गति नहीं होती ।

सूत्रः— कुंडलाङ्गदहारमुकुटकेयूरपट्टकटकआलम्बसूत्रनुपुरमुद्रिका मेखला सिश्रुरिका ग्रैवेयककर्णपूरा भोगभूमिजपुरुषाणामा भरणाः।२६

अर्थः– मुनि श्रावक आदि को दान देने से अर्जित पुण्य प्रभावसे सम्पूर्ण हर तरहके भोगों से परिपूर्ण भोगभूमि में प्राणी जन्म लेता है । वहां पैदा होने वाले पुरुषों के नाना प्रकार के आभूषण होते हैं । जिनके कि द्वारा अपने शरीर को सज्जित कर आनंद मनाते रहते हैं । आभूषणों की किस्में या प्रकार सोलह होती हैं । नाम उसके ये हैं :-

(१) कुंडलाख्य आभूषण (२) अंगदाख्य आभूषण (३) हार नामक आभूषण (४) मुकुट नामक आभूषण (५) केयूर नामक आभूषण (६) पट्ट नामक आभूषण (७) आलम्ब (लम्बा हार आभूषण) सूत्र (जनेऊ) नामक आभूषण . नूपुर (पैरोंमें पहिना जानेवाला आभूषण) (१०) मुद्रिका ११) मेखला (करधोनी) आभूषण

(१२) असि (तलवार) आभूषण (१३) छुरिका (छुरी) आभूषण (१४) कटक नामक आभूषण (१५) ग्रैवेयक नामक आभूषण (१६) कर्णपूर नामक आभूषण

सूत्रः— संज्वलनक्रोधमानमायालोभपुंस्त्रीनपुंसकवेदाःसत्यासत्योभयानुभयमनोयोगसत्यासत्योभयानुभयवचनयोगौदारिककाययोगा अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने आस्रवाः ॥२०॥

अर्थः—अनिवृत्तिकरण नामक नवमें गुणस्थान में सोलह प्रकृतियोंका आश्रव होताहै सोलहकर्म प्रकृतियोंके नामये हैं (१) संज्वलन कषाय सम्बन्धी क्रोधकर्म प्रकृति (२) संज्वलन कषाय सम्बंधी मानकर्म प्रकृति (३) संज्वलन कषाय सम्बधी माया कर्म प्रकृति (४) संज्वलन कषाय सम्बन्धी लोभकर्म प्रकृति (५) पुंवेद नामक कर्मप्रकृति (६) स्त्रीवेद नामक कर्मप्रकृति (७) नपुंसकवेद नामक कर्मप्रकृति (८) सत्य मनोयोग (९) असत्य मनोयोग (१०) उभय मनोयोग (११) अनुभय मनोयोग (१२) सत्य वचनयोग (१३) असत्य वचनयोग (१४) उभयवचन योग (१५) अनुभय वचनयोग (१६) औदारिक काय योग !

सूत्रः— अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः इति षोडशाक्षरमंत्रवर्णाः ॥२१॥

अर्थ :—सोलह अक्षर पाये जाते हैं जिस मंत्रमें उस

मंत्र के सोलह अक्षर इसप्रकार से हैं :- अ र्ह सि द्धा चा र्यो पा ध्या य सर्व सा धु भ्यो न मः ।

सूत्रः— ॐ ह्रीं, श्रीं क्लीं जलदेवताभ्यो नमःस्वाहा इति षोडषाक्षर विद्यामंत्रोमत्स्यपाशादूरीकरणनिमित्त ॥३२॥

अर्थः- मछलीको पकड़नेकेलिये डलेहुए जालों को निरर्थक करनेकेलिये या जालोंके पाससे मछलियों को दूरकरने के लिये निमित्तभूत, सोलह अक्षरों वाला विद्यामंत्र यह है। इस मंत्रके सोलह अक्षर अलग अलग इस प्रकार से हैं :-

ॐ ह्रीं, श्रीं, क्लीं ज ल या त्रा दे व ता,. भ्यो न मः स्वा हा ।

सूत्रः— ॐ ह्राँ, श्रीं, ह्रां, ह्रीं, अग्निमुपशमनं कुरुस्वाहा" इत्यग्नि भयवारणनिमित्त ॥३३॥

अर्थः- भयंकर रूपसे जलती हुई अग्निके भय को दूर करनेमें सहायक, (कारणभूत) सोलह अक्षर वाला मंत्र यह है। इसके सोलह अक्षर अलग अलग इस प्रकार से हैं :-

ॐ ह्राँ, श्रीं, ह्रा, ह्रीं, अ ग्निं मु प श म नं कु रु स्वाहा ।

संक्षेप में यह है कि इस मंत्रके प्रभावसे कहीं भयंकर आग हो तो वह बुझ जाती है, जल्दी ही शमन को

प्राप्त हो जाती है ।

सूत्रः—कल्पतरुशाखात्रुटनसूर्यास्तमनचन्द्रविम्बच्छिद्रद्वादशफणसर्पवि· मान परावर्तनकमलघटस्थकमलभूनलृथरयशोतप्रकाश शान्तजल शुष्कसरोवरशुनास्वर्णपात्रस्थक्षीरभक्षणगजारूढमर्कट सागरसीमात्यागवद्दुभारवाहिलघुगोवत्सोप्रारूढराजपुत्रधूलधूमरितरत्नराशिकृष्णगजयुद्धदर्शनानि चन्द्रगुप्तस्वप्नानि ।२४।

अर्थः– तीनसौ बाद्स ईस्वो पूर्व सनमें सम्राट चन्द्रगुप्त यहाँ हुआथा । जैनधर्म प्रतिपालक होनेके साथ ही साथ वह महान पराक्रमी, साहसी, शासन कुशल,वीर राजा था । भारतके वर्तमाननिवासी और उसकी भावी संतान सदैव सन्मान, स्नेह, से उसके नाम स्मरण को करती रहेगी । भारत की स्वातंत्र्य दीपज्योति को, पश्चिम की प्रबल यूनानी पवनसे रक्षित करते हुए, अपनेज विन काल तक अक्षुण्णरूप ो ज्वलित रखने वाला यदि कोई था तो वह था सम्राट चन्द्रगुप्त । चन्द्रगुप्तको अपने जीवनके अंतिमभागमें, एक रात्रिके समय भारतकी भावी अवनतिका संकेत करनेवाले सोलह स्वप्न दिखाई दिये । सोलह स्वप्नोंके सयविवेचनके नाम ये हैं :-

[१] कल्पतरुशाखात्रुटन :– चन्द्रगुप्तने पहिला स्वप्न देखा कि कल्पवृक्षकी एक डाली टूटकर गिर पड़ी ।

[२] सूर्यास्तमन स्वप्न – दूसरा स्वप्न जो उनने देखा

वह था डूबता हुआ या अस्ताचल की ओर जाता हुआ सूर्य ।

[३) चन्द्रबिम्बछिद्र स्वप्न :– तीसरे स्वप्नमें उनने देखा कि चन्द्रबिम्ब अनेक छेदोंसे युक्त है । उसमें अनेक छेद होगये हैं ।

[४] द्वादशफणसर्प स्वप्न :– चन्द्रगुप्त को चौथे स्वप्न में बारहफण वाला साँप दिखाई दिया ।

(५) विमानपरावर्तन स्वप्न :– भारत भूमि से वापिस लौटते या जाते हुए देव विमान को सम्राटचन्द्रगुप्तने अपने पांचवे स्वप्नमें देखा ।

(६) मलघटस्थकमल स्वप्नः– छटवा स्वप्न बतला रहा कि कमल सरोवरमें न होकर विष्टा [गन्दगी] से भरे हुए घड़ेमें लगा हुआ है ।

[७] भूतनृत्य स्वप्नः– सातवें स्वप्नमें भूतोंके नृत्य करते हुए सम्राट चन्द्रगुप्तने देखा ।

[८] खद्योत प्रकाश स्वप्नः– स्वप्नमें दिखलाई दिया कि यहाँ वहाँ जुगनुओं का प्रकाश हो रहा है ।

[६] शान्तजल शुष्क सरोवरः– जिसका अन्त दिखाई दे रहा है तथा जिसका जल सूख गया है ऐसा सरोवर (तालाब) सम्राटको नौमें स्वप्नमें दिखाई दिया ।

(१०) शुनास्वर्णपात्रस्थक्षीरभक्षण– दसवें स्वप्नमें

दिखलाई दिया कि कुत्ता सोनेके बर्तनोंमें परोसी हुई दूध मिश्रितस्वाददार खीर खा रहा है।

(११) गजारूढ़ मर्कट स्वप्नः— हाथी जिसपर हौदा नहीं है, बन्दरके द्वारा अधिष्ठित है अर्थात् जिसपर बन्दर बैठा हुआ है ऐसा हाथी चन्द्रगुप्तको ग्यारहमें स्वप्नमें दिखलाई दिया।

१२ सागरसीमा त्यागस्वप्नः— समुद्रको भी अपनी मर्यादा छोड़ते हुए चन्द्रगुप्तने स्वप्नमें देखा।

(१३) बहुभारवाहि लघु गोवत्स स्वप्नः— छोटे छोटे गायके बछड़ोंको बहुत ज्यादा भार या (बोझे) से लदे हुए सामान ढोते हुए सम्राट चन्द्रगुप्तने अपने तेरहवें में स्वप्नमें देखा।

[१४] उष्ट्रारूढ़ राजपुत्र स्वप्नः— चौदहवाँ स्वप्न बतला रहा था कि राजकुमार हाथी के बजाय ऊंट पर बैठा हुआ है।

[१५) धूलधूसरितरत्नराशि स्वप्नः—पन्द्रवेस्वप्नमें चन्द्रगुप्तने देखाकि नाना प्रकारके रत्नों वाला ढेर धूलसे मलिन तथा मटमेला जैसा हो रहा है।

[१६] कृष्ण गजयुद्ध दर्शन स्वप्नः—चन्द्रगुप्तने अपने अन्तिम स्वप्नमें कि दो काले रंगके विशाल काय हस्ती परस्परमें युद्ध [लड़नाभगड़ना] कर रहें हैं।

इन मोलः स्वप्नोंके द्वारा चन्द्रगुप्तको भारतकी भावी दुर्दशा का आभास मिल गया था। धर्महानी उच्च कुलीन पुरुषोंकी अवनति नीचपुरुषोंका उच्चपदपर आसीन होना राजाओंका अपदस्थकर्म करना राज्य की गतिसे उतरा जाना आदि ऐसे तथ्य हैं जिनको कि चन्द्रगुप्तने अपने स्वप्नोंके परिणामस्वरूप अवगत किया था हम देखते हैं कि स्वप्नोंका दर्शनमात्र दर्शन ही नहीं था अपितु उनका परिणाम जीता जागता साकार हुआ सा दीखता है।

सूत्रः—गर्भाधानप्रीतिसुप्रीतिधृतिमोद प्रियोद्भ नामकरणवहिर्यानानिपद्याऽन्नप्राशव्युष्टिकेशवायलिपिसंख्यानोपनीनिचयप्रतावतरण विवाहाः संस्काराः ॥३४॥

अर्थः— पुराण परिचय प्रदान करते हैं कि प्राचीन कालमें ऽऽ प्राणी के संस्कार हुआ करते थे। जहाँ तक शुद्ध स्वरूप या निश्चय धर्मका दृष्टि कोण है ये संस्कार वगैरह सब ढोंग हैं पाखन्ड हैं उनकी कोई वकत नहीं है किन्तु लोक धर्म को दृष्टिमें रखने पर सभी संस्कारों को उपेक्षणीय माना या कहा जा सके यह सम्भव नहीं है। खान से निकले एवं अग्नि पुरोंसे संस्कृत स्वर्णमें स्वर्णत्व की दृष्टिसे अंतर न होते हुए चाक चिक्कणता निर्मलता आदि के लिहाज से उन दोनों में बहुत ज्यादा अंतर होता है।

यही बात संस्कार में संस्कृत (परिष्कृत पुरुष के साथ है। संस्कार से संस्कृत के परिणाम क्रिया आचरण बोलचाल, रहन सहन आदि प्राय साधारण पुरुषों से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ और आदरणीय हुआ करता है। सोलह संस्कारोंके ये नाम हैं :-

(१)गर्भाधान संस्कार (२) प्रीति संस्कार (३) सुप्रीति संस्कार [४)धृति संस्कार (५) मोद संस्कार (६) प्रियोद्भव संस्कार (७) नामकरण संस्कार (८) बहिर्यान संस्कार (९) निषद्या संस्कार (१०) अन्नप्राशन संस्कार (११) व्युष्टि संस्कार (१२) केशवाय संस्कार [१३] लिपिसंख्यानसंस्कार [१४) उपनीति संस्कार (१५] व्रतचर्या संस्कार (१६] व्रतावतरण व विवाहसंस्कार

इनके विवेचनके लिये अग्रसर होनेके पूर्व पाठकों यह ध्यानमें रख लेना चाहिये कि इन सोलह संस्कारोंमें, गर्भसे लेकर ब्रह्मचर्यावस्था पर्यन्त की क्रियाओंको ध्यानमें रख, पुरुषके लिये अनुकरणीय कर्मोंका निर्देश किया गया है, साथ ही गृहस्थाश्रम या गृहस्थावस्था की अर्थ रूप क्रिया (विवाह) को भी इसमें समाविष्टकर लिया गया है। साधारणतया विवाह नामक क्रिया की, चेतन क्रियाओंमें अनुक्रम संस्कार सत्रह है। इसका विशेष वर्णन महापुराण [३८) अडतीसवें अध्यायमें किया गया है।

[१] गर्भाधान संस्कार या क्रिया:--ऐसी स्त्री को जो रजस्वला हुई हो और शास्त्र निर्दिष्ट समयके बाद स्नान की हुई हो, उसे मुख्यकर गर्भाधानके पहिले भगवान अर्हन्तदेवकी पूजाके द्वारा मंत्र पूर्वक जो संस्कार किया जाता है। उसे गर्भाधान नामक प्रथम संस्कार या क्रिया कहतेहैं २प्रीति संस्कार क्रिया:--शास्त्रोक्त विधिके अनुसार गर्भाधानक्रियाका समाचरण कर दंपती पति और पत्नी को, विषय सेवनकी अभिलाषा या अनुराग के बिना केवल संतान प्राप्तिके निमित्तको समागम करना चाहिये। ऐसा करनेपर जब गर्भाधान होजाय तो गर्भाधानके तीसरे महीने में प्रीति नामकी क्रिया करनी चाहिये। इस क्रियाके करने में मंत्र पूर्वक अर्हतदेवकी पूजा ही की जाती है, साथही दरवाजेपर तोरण बाँधे जाते है और दो पूर्णकलशोंकी स्थापना कर शक्ति अनुसार नगाड़े आदि बाजे प्रतिदिन बजवाये जाते हैं। ऐसा तब तक करते रहना पड़ता है जब तक कि गर्भस्थ शिशुजन्म न ले लेवें।

३ सुप्रीति संस्कार क्रिया :- गर्भाधानसे पाचवें मास में, गृहस्थ ने प्रीति संस्कारमें जिन जिन बातोंको घरपर किया था उन्हीं क्रियाओं की अग्नि और देवताओं को साक्षी करके अर्हन्त देव की प्रतिमा के समीप, गृहस्थ को सुप्रीति संस्कार के सम्पन्न हेतु करना पड़ता है।

धृति संस्कार (क्रिया) धर्मपरायण एवं स्थिर चित्त गृहस्थ प्रीति और सुप्रीति संस्कार सम्बन्धी क्रियाओंको कर गर्भाधान से सातवें मासमें गर्भकी वृद्धि हेतु धृति क्रिया को करता है। इसके करने में अर्हन्त देव की पूजन मंत्रो च्चार, वाद्य प्रयोगादि आवश्यक होते हैं।

(५) मोद संस्कार क्रिया गर्भसे नवमें मासमें मोद नामको क्रिया को सद्गृहस्थ करता है। इसके करने में अर्हन्त देव पूजा के साथ ही ही साथ गर्भिणी के शरीर मात्रिकाबंध आभूषण पहिनाना मंगलाचारादिक्रियाएँ की जाती हैं।

[६] प्रियोद्भव संस्कार। क्रिया। शिशुके जन्म लेनेके पश्चात यह क्रिया की जाती है। इसी का दूसरा नाम जातकर्म विधि है। इसक्रिया में मध्यवर्ती अनेक क्रियाएँ हैं। इनका वर्णन उपासकाध्ययन सूत्र में विशेष रूपमें पाया जाता है।

७– नामकरण संस्कार। क्रिया :– जन्म से बारहवें दिन अथवा उसके बाद जिस दिन चन्द्रमा नक्षत्र आदि माता पिता शिशु आदिके अनुकूल हों, गुरुशांति एवं लाभकारी हों उस दिन यह क्रिया की जाती है। इस क्रियामें अरहन्तदेव एवं ऋषियोंकी पूजा अपनी विभूति एवं शक्ति के अनुसार करता हुआ, पात्रों को यथायोग्य दान देता हुआ भगवानके एक हजार आठ नामोंमें से घटपत्र-

विधि के अनुसार एक नाम, बालक का रखता है।

८ बहिर्यान संस्कारः— शिशुजन्म से दूसरे तीसरे अथवा तीसरे चौथे मासके किसी शुभ दिनमें तुरही, नगाड़े आदि मांगलिक वाद्यों के साथ बहिर्यान क्रिया को गृहस्थके लिये करना चाहिये इस क्रिया को करते हुए गृहस्थ जब बच्चे को बाहर लावे तब भाई, बंधु, बहिन आदि को अपनी शक्त्यानुसार शिशु को पारितोषिक आदि देना चाहिये

९ निषद्या संस्कार क्रिया := कुछ बड़े होने पर निषद्या नामकी क्रिया करनेकेलिये सद्गृहस्थ प्रयत्नशील होता है। इस क्रिया में अर्हन्त देव की पूजा आदि मांगलिक क्रियाओं के साथ ही साथ बालक को योग्य, लम्बी, चौड़ी शय्या पर बिठाया जाता है।

१० अन्नप्राशन संस्कार क्रियाः— बालक जब सात आठ महीने का हो जाता है तब अर्हन्त देवकी पूजा आदि क्रियाओं के साथ इस क्रिया में, शिशु को अन्न खिलाना प्रारंभ किया जाता है।

११ व्युष्टि संस्कार क्रिया :— बालक खेलते हुए, किलकारी करते हुए जब एक सालका हो जाता है तब इस क्रियाको गृहस्थ शिशुका पिता करता है। इसीका दूसरा नाम वर्षवर्धन या वर्ष गांठ। पूजादि सत्क्रियाओं के साथ ही साथ मित्र कुटुम्बी जनोंको भोजन कराया जाताहै,इस संस्कारकी

की पूरी क्रियाओं को करने में।

(१२)केशवाप(क्रिया संस्कारः— व्युष्टि संस्कार ने बाद किसी एक शुभदिन में केशवापसंस्कार किया जाता है। इसदिन देव शास्त्र गुरुकी पूजाके अनन्तर उम्दरे में बालक के बाल काटे जाते हैं। मुंडन कराने के बाद स्नान कराकर चंदन लेपादि बालकको माता पिता लगाते हैं। अच्छे वस्त्र आभूषण पहिना मुनि आदि गुरुजनों के समीप उसे लेजाते हैं, और कहते है बालक से 'बेटा। प्रणाम करो'। गुरुजन भी आशीर्वादादि प्रदान करते है। यही सब क्रियाएँ इसमें गर्भित है। इस क्रिया का दूसरा नाम चौल कर्म है।

१३ लिपिसंख्यानसंस्कार । क्रिया पांच वर्ष के पुत्र के हो जाने के पश्चात् अक्षर ज्ञान कराने की क्रिया को को पिता करता है। इस क्रियाका नाम लिपिसंख्यान है ग्रहस्थ इसमें पूजा करके यथाशक्ति दान देताहै और बालक को गुरु के समीप विद्याध्ययन केलिये लेजाता है।

उपनीति क्रिया या संस्कारः- आठ वर्षका बालक जब हो जाता है तो उसे पिता यज्ञोपवीतधारण कराते हैं यज्ञोपवीतधारण कराने समय बालक के केशों का मुंडन व्रत बंधन आदि अनेक क्रियाओं को पड़ता हैं। इस समय व्रतों को धारण करनेके साथ साथ एक वेश विशेष सफे-

दुपट्टा व सफेद धोती को वह धारण कर लेता है और ब्रह्मचारी कहलाने लगता है।

१५ व्रतचर्या संस्कार क्रिया उपनयन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी के योग्य चिन्हों-- कमर का चिन्ह तीन लर की मूंज की रस्सी जंघा का चिन्ह सफेद धुली हुई धोती वक्षस्थलका चिन्ह सातलड़ का यज्ञोपवीत और शिर का चिन्ह स्वच्छ और घोटमोट शिर मुंडन- धारण करनेके साथ ही माथ बालक को व्रतों को धारण करना चाहिये। व्रतों में अणुव्रत तो गर्भित है ही साथ ही कुछ और भी नियम हैं-- पान नहीं खाना, उबटन नहीं लगाना आदि विद्याध्ययन समय तक इन व्रतों का परिपालन आवश्यक है अनन्तर विद्याध्ययन की समाप्ति पर ये व्रत छूट जाते हैं। ध्यान क्रिया का नाम व्रतचर्या संस्कार है।

१६ व्रतावतरण विवाह एवं संस्कारः-- जैसा लिखा जो चुका है विद्याभ्यास की समाप्तिके बाद व्रतचर्या में धारण किये गये की यह व्रत छोड़ देता है या उनका त्याग कर देता है। इस छोड़ने या त्यागने की भी एक विधि है, क्रिया है, जिसका कि नाम व्रतावतरण है।

जिस समयसे व्रत धारण किये थे उसके बारह अथवा सोलह वर्ष बाद, भगवानकी पूजा कर, गुरुकी साक्षी पूर्वक व्रतों का अव तरण (त्याग) किया जाता है।

इसके बाद ब्रह्म चर्यावस्था की इति कर गृहस्थाश्रम के अर्थ की ओर बालक के, वयप्राप्त बालक के, माता पिता सचेष्ट होते हैं।

माता पिता सत्कुलीना वयःप्राप्ता कन्या की खोज में रहते हैं जिसके साथ अपने चिरञ्जीव का पाणिग्रहण (विवाह) संस्कार किया जा सके । इसमें योग्य वर कन्या का समागम होने पर सिद्ध भगवानों की प्रतिमा एवं अग्नियों की साक्षी पूर्वक पाणिग्रहण सम्बन्धी सम्पूर्ण क्रियाएं कराई जाती है । विस्तार भय से विवाह सम्बन्धी क्रियाओंका विवेचन नहीं किया जा सकता है ।

सूत्रः— भरतचक्रिस्वप्नं द्वात्रिंशत सिंहसिंहपिशु करिभारमृदश्र शुष्क पत्र पयोगिद्वागगजारूढमर्कटगोपन्नतकौशिकनृत्याभूतशुष्कमध्यपर्यन्त-प्रचुरोदकतडागधूलधूसरितर नराशिस्थार्थमुगहितत्तरुणवृषभ परिवेष-युक्ताशीताशुस्थिरीगीकृत संगत्यौ मंगरभच्छियौ वृषभौ मेघतिरोहित-रवि संशुष्कछायमरुजीर्णपर्णराशिदर्शनानि ॥३६॥

अर्थः— वर्तमान [इस हुंडावसर्पिणी सम्बन्धी] चौबीस तीर्थ करों में जैसे भगवान ऋषभदेव आदि तीर्थकर हुए हैं वैसे ही उनमें पुत्रोंमें से भरत नामक पुत्र वर्तमानकालीन बारह चक्रवर्तियों में से आदि(प्रथम] चक्रवर्ती थे । ये षट खंडके अधिपति होनेके साथही साथ नव निधि चौदह रत्न आदि जैसी अतिशय पुण्य से प्राप्त होने वाली, विभूति के स्वामी

थे। वीरता कूट कूट कर इनमें भरी हुई थी, शौर्य धैर्यादि गुण इनकी सेवा में करनेमें अपना अहोभाग्य मानते थे, पुत्र पत्नी प्रासाद प्राकार आदि समस्त सुख सामग्री समन्वित सम्राट् पट्खंडाधिपति, श्रीमन्त भरत जी थे।

संसार की सुन्दरतम साधन सामग्री के अधिपति होते हुए भी भरत ने अपनी प्रवृत्ति धर्म से नही मोड़ी। वे महान धर्मात्मा थे। इन विषयों का भोग करते हुए भी उनमें अनुरक्त नहीं होते थे। वे अपने आपको जलसे भि, न्न कमल है जैसे रखते थे।

एक रात्रि को जब वे सो रहे थे तब उनने सोलह स्वप्नों को देखा। सोलह स्वप्नों के नाम ये हैं।

[१]द्वाविंशत सिंह स्वप्न [२] सिंह शिशु स्वप्न [३] करि भारसुदग्व स्वप्न [४] शुष्क पत्रोपभोगिछाग स्वप्न [५] गजारूढमर्कटस्वप्न [६] खगोपद्रु तकौशिक स्वप्न [७] नृत्यत्भूत स्वप्न [८] हुष्कमध्यपर्यन्त प्रचुरोदकतडागस्वप्न [९] धूलधूसरितरत्न राशि स्वप्न [१०] श्वार्थभुगहितस्वप्न (११) तरुण वृषभ स्वप्न १२ परिवेषयुक्तशीतांशु स्वप्न १३ मिथोयोक्रतमंगत्यौमंगत्यच्छियौवृषभौ स्वप्न १४ मेघतिरोहितरवि स्वप्न १५ संशुष्कछायतरूस्वप्न १६ जीर्णपर्णराशि ।समुच्चया स्वप्न। इसका स्पष्ट विवेचन इस प्रकार है:-

(१) द्वाविंशतसिंहदर्शन स्वप्नः- भरत चक्रवर्ती ने

पहिले में देखा कि तेतीस सिंह अकेले ही पृथ्वी पर विहार कर पर्वत के शिखर पर चढ़ गये।

(२) सिंहशिशुदर्शन स्वप्नः— दूसरे स्वप्नमें दिखलाई दिया कि एक सिंहका बच्चा है और उसके पीछे अनेकों मृगशावक चल रहे हैं।

३ करिभारभृग्नस्वदर्शन स्वप्नः—चक्रवर्ती ने देखा कि एक घोड़ा ऐसा है जिसकी कि कमर हाथी के द्वारा उठाये जाने योग्य बोझा ढोने से टूटी जा रही है।

४ शुष्कपत्रोपभोगिछा दर्शन स्वप्नः—वृक्षों के लताओं के आदि के सूखे पत्तों को खाने वाले अनेकों बकरों को भरतने चौथे स्वप्न के रूप में देखा।

५ गजारूढमर्कटदर्शन स्वप्नः- पांचवें स्वप्नमें भरत जी ने देखा कि एक विशालकाय हाथी है उस पर अनेकों बंदर चढ़े हुए हैं।

६ खगोपद्रुतकौशिकदर्शनस्वप्नः— सो महाराजा भरत देखते हैं कि अनेकों कौवे और पक्षी उल्लू को तंग कर रहे हैं, उसे दुख दे रहे हैं। यह चक्रवर्ती का छटवां स्वप्न था।

७ नृत्यरभूतदर्शनस्वप्नः-अनेक प्रकारसे नाचते कूदते हुए भूतों को भरत ने अपने सातवें स्वप्न के रूपमें देखा

८ शुष्कमध्यपर्यन्तप्रचुरोदकतडागदर्शन स्वप्नः--आ-

ठवाँ स्वप्न महाराजाका एक अपने ही ढंगका था। उन्हों-ने एक तालाब देखा जिसका कि मध्यभाग सूखा था और चारों ओर किनारोंपर लबालब पानी भरा हुआ था।

९ धूलधूसरितरत्नराशिदर्शन स्वप्नः–नवमें स्वप्न के रूपमें धूल से मलिन हुई रत्नों की राशि को महाराज भरत ने देखा।

१० श्वार्थमुगहितदर्शन स्वप्नः– आदरसत्कारसे जिसकी पूजा की गई है और जो नैवेद्य खारहा है ऐसे कुत्ते को उनने अपने दशवें स्वप्न में देखा।

११ तरुण वृषभदर्शनस्वप्नः- अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानराहित्य पनेको बतलाने वाला यह स्वप्न था। उसने महाराजा ने देखा कि चन्द्रमा सफेद परिमंडल से घिरा हुआ है।

१२ परिवेषयुक्तशीतांशुदर्शन स्वप्नः–अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान राहित्यपनेको बतलाने वाला यह स्वप्न था इसमें महाराजाने देखा कि चन्द्रमा सफेद परिमंडलसे घिरा हुआ है।

१३ मिथोंगीकृतसंगत्योद्गलच्छियौ वृषभैस्वप्नः– तेरहवें स्वप्न में देखा कि आपस में मिलता से युक्त किन्तु जिनकी शोभा नष्ट हो रही है ऐसे दो बैल खड़े हैं।

१४ मेघतिरोहितरवि स्वप्नः–इस स्वप्न में देखा कि

सूर्य– जो कि दिशारूपी स्त्रीके कर्ण आभूषण के समान हैं— मेघ मंडल से ढ़का हुआ है।

१५ संशुष्कछायतरुदर्शन स्वप्नः– महाराजा भरत ने अपने पन्द्रहवें स्वप्न में देखा कि बिल्कुल सूखा और छाया से रहित एक वृक्ष खड़ा हुआ है।

१६ जीर्णशीर्णपर्णराशिदर्शनः– अंतिम स्वप्न जो महाराजा भरत ने देखा था वह था पुराने सूखे पत्तों का ढेर।

इनस्वप्नों ने आगामी काल में होने वाले ह्रास को महाराज भरत के लिये बतला दिया था। इसी ह्रास रूप परिणाम का विवेचन भगवान आदिनाथ ने अपनी धर्मसभा में भी स्वप्नों के फलों को बतलाते हुए किया था।

(अपूर्ण)

सत्रहवां अध्याय—

सूत्रः—पृथ्व्यप्तेजोवायुवनसतिद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरक्षाऽजीवरक्षाऽप्रतिलेखदुष्प्रतिलेखोपेक्षाऽपहरण मनोवचनकायसंयमाः संयमाः ॥१॥

अर्थ– संयम दो शब्दोंसे मिलकर बना है। सं का अर्थ है समीचीन रूप से अच्छी तरह। दूसरे शब्द यम का

अर्थ है नियंत्रित करना वश में करना। इन्द्रिय और मनको जो वेलगाम हो विषयवासनाओंके पीछे भागती फिर रही हैं भली तरह से वश में रखना संयम कहलाता है। इस सूत्रमें संयमके सत्रह भेदों को गिनाया गया है, नाम भेदों के इस प्रकार हैं:-

१ पृथ्वीरक्षा नामक संयम इसी तरह आगे लिखे जानेवाले भेदोंके नामोंके साथ "नामकसंयम पद जोड़ लेना चाहिये २अप् (जल) रक्षा ३तेज (आग) रक्षा ४वायु रक्षा ५ वनस्पति रक्षा ६ द्वीन्द्रिय रक्षा ७ त्रीन्द्रिय रक्षा ८ चतुरिन्द्रिय रक्षा ९ पञ्चेन्द्रियरक्षा १० अजीव रक्षा ११ अप्रतिलेख १२ दुष्प्रतिलेख १३ उपेक्षा १४ अपहरण १५ मनः संयम १६ वचन संयम १७ काय संयम

१ पृथ्वीरक्षा संयम—पृथ्वी संबंधी स्थावर जीवोंकी हिंसा न हो जाय, उनके रक्षण के लिये प्रयत्न करना।

२ अप जल रक्षा संयमः—जल संबंधी स्थावरजीवों की रक्षा हेतु सावधानी पूर्वक इन्द्रिय और मन की प्रवृत्ति करना।

३ तेज (आग) रक्षासंयमः—अग्नि सम्बंधी जीवों को व्याघात या पीड़ा न हो जाय इसके लिये सतर्कता पूर्वक प्रवृत्ति करना,

वायु रक्षा संयमः-वायु संबंधी स्थावर जीवोंकी रक्षाके

उद्देश्यसे इन्द्रियादिककी प्रवृत्ति सावधानीसे करना

५ वनस्पतीरक्षा संयमः-- वनस्पति काय नामक एकेन्द्रिय जीवोंकी सुरक्षाके लिये यत्नाचार सहित इन्द्रियों की प्रवृत्ति करना

६ द्वीन्द्रिय जीव रक्षासंयमः-- लट आदि द्वीन्द्रिय जीवों का घात न होजाय इसको दृष्टिमें रख यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करना।

७ त्रीन्द्रिय जीव रक्षा संयमः - चिटी आदि त्रीन्द्रिय जीवों की रक्षाकी दृष्टिसे सावधानी सहित इन्द्रियोंकी चेष्टा करना

८ चतुरिन्द्रिय रक्षा संयमः-- भँवरा आदि चार इन्द्रिय वाले प्राणियोंके प्राणो की रक्षा करना

९ पंचेन्द्रिय रक्षा संयमः-- हाथी घोड़े आदि पशु तोता मैना आदि पक्षी और मनुष्योंके प्राणोंको ठेस न पहुंचे उनकी सुरक्षा बनी रहे इस लिहाजसे सावधानी सहित कार्य करना

१० अजीव रक्षाः- सूखे तृण पत्थर आदि का छेदन भेदनादि न करना व्यर्थ की क्रियाओंमें व्यस्त न रहना

११ अप्रतिलेख संयमः- संयमके साधन पीछी कमंडल आदिसे द्रव्यका शोधन करना

१२ – दुष्प्रतिलेख संयमः-- सावधानी और यत्न

पूर्वक वस्तुओं का परिखामों आदि का शोधन करना ।

१३-- ऊंचा संयम-- संयम के उपकरणोंको भली भांति देख भाल कर लेना ।

१४-- अपहरण संयम-- संयम के उपकरणों में से द्वीन्द्रियादिक त्रस जीवोंको निकाल कर अलग कर देना

१५--मनः संयम :-- मन को नियंत्रित कर प्रवृत्ति करना ।

१६-- वचन संयम :-- दूसरे के प्राणोंके दुःखाने वचनों को न बोलते हुए, यदि बोलने की आवश्यकता हुई तो हितमित और प्रियवचनों को बोलना ।

१७ काय संयम :-- शरीर को नियंत्रण में रखते हुए उससे ऐसी चेष्टाएं न होने देना जिससे दूसरेप्राणीके प्राणों को दुःख दर्द और संताप हो ।

सूत्रः— पटरसभोजनकुंकमादिलेपपुष्प ताम्बूलगतिश्रवगन्दत्यावलोकर मैथुनस्नानाभूपणवस्त्रवाहनशय्यासन सचित्तदिग्गमनौपधगृहारंभ श्रावकस्य नित्यकर्तव्यनिय मा: ॥८॥

अर्थः- व्रत परिपालन में तत्पर, गृहस्थी श्रावक को अपने कर्तव्यकर्मोंके विषयमें रोज हमेशा नियम करके प्रवृत्ति करना चाहिये । नियमसे प्रयोजन समय की अवधि ले किसी वस्तुके त्याग करने से है । ऐसे सत्रह विषय हैं जिनके विषयमें श्रावक नियम करना है सत्रह नियमों के

नाम ये हैं :–

१ षट्रस भोजन नियम २ कुंकुमादिलेपनियम ३ पुष्प नियम ४ ताम्बूलनियम ५ गीतश्रवणनियम ६ नृत्यावलोकन नियम ७ मैथुननियम ८ स्नाननियम ९ आभूषणनियम १० वस्त्रनियम ११ वाहननियम १२ शय्यासननियम १३ सचित्तनियम १४ दिग्गमननियम १५ औषधनियम १६ गृहारंभनियम १७ संग्रामनियम ।

२ षट्रसभोजननियम :– छह प्रकारके रसोंमें से इतने रसवाला भोजन करूंगा ऐसा प्रमाण करलेना षट्रसभोजननियम कहलाता है ।

२ कुंकमादिलेपनियम :–मैंदिनमें इतनी वार नैत्न, कुंकुम आदि लगाउंगा, बाल काढूंगा आदि रूपनियम इसके अंतर्गत होते हैं ।

३ पुष्पनियम :– इतने प्रकारके फूल आज इतनी दफे सूंघूंगा या उपयोग में लाऊंगा ऐसानियम करना

४ ताम्बूलनियम :– ताम्बूल से अर्थ पान का ही न होते हुए सुपारी, लौंग, सौफ, ईलायची आदि द्रव्योंसे है, इन वस्तुओं में से इतनी वस्तु इतनी वार सेवन करूंगा ऐसा नियम या प्रमाण करना ताम्बूल नियम कहलाता है ।

५ गीतश्रवणनियम :– अमुक प्रकारके गीत इतनी संख्या अमुक समय में सुनूंगा ऐसा नियम करना ।

६ नृत्यावलोकननियम, अमुकप्रकार का - देशी, विदेशी, ग्रामीण, शहरी आदि - नृत्य बतने समय तक देखूंगा अथवामैं आज नृत्य देखूंगा ही नहीं ऐसा नियम करना नृत्यावलोकन नियम कहलाता है।

७ मैथुननियम :— कामसेवन विषयक नियम करना अथवा ऐसा नियम करना कि इतने समयतक ब्रह्मचर्य पालूंगा।

८ स्नाननियम :- इतनी वार आज स्नान करूंगा ऐसा प्रमाण करना स्नान नियम कहलाता है।

९ आभूषणनियम :- मैं आज इतनी तरह के इतने आभूषण पहिनूंगा ऐसा नियम करना आभूषण नियम है।

१० वस्त्रनियम :- अमुक ढंगके इतने वस्त्र मैं आज पहिनूंगा इस तरह का प्रमाण करलेना वस्त्र नियम कहलाता है।

११ वाहननियम :- आज सवारी का उपयोग नहीं करूंगा अथवा यदि वाहन का उपयोग करना पड़ा तो अमुक किस्म की सवारी को काममें लाउंगा ऐसा नियम करना वाहन नियम कहलाता है।

१२ शय्यासननियम :- अमुक प्रकार की शय्या का अथवा अमुक प्रकारके आसनोंका उपयोग करूंगा ऐसा प्रमाण कर लेना शय्यासन नियम कहलाता है)

(१३) सचित्तनियमः— हरी वनस्पति की इतनी किस्मों का आज प्रयोग करूंगा अन्यों का नहीं सचित्त नियम कहलाता है। जीवरक्षाकी दृष्टि इस नियम में निहित रहती है।

(१४) दिग्गमननियमः— चारों दिशाओं में से इतनी दिशा या दिशाओं में इतनी दूर तक जाऊंगा ऐसा नियम करना।

(१५) औषधिनियम :— औषधियोंमें से अंग्रेजी, आयुर्वेदीय या यूनानी किस्म की दवाई का सेवन दिनमें इतने दफे करूंगा ऐसा नियम औषधिनियम कहलाता है।

१६ गृहारंभनियमः — इतने घरों को बनवाऊँगा ज्यादा ऐसी अवधि में सीमित कर लेना गृहारंभनियम कहलाता है।

(१७) संग्रामनियम :— मैं संग्राम करूंगा ही नहीं अथवा इतनी उम्र तक इससे ज्याद संग्राममें भाग नहीं लूंगा ऐसी प्रतिज्ञा लेना संग्रामनियम कहलाता है।

सूत्र—अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभवैक्रियरूपटक नरकदेवायुर्मनुष्यतिर्यग्गत्यानुपूर्व्यदुर्भगानादेयायशःकीर्तयः अविरतसम्यक्त्वे उदय व्युच्छिन्नाः प्रकृतयः ।।३।।

अर्थ— अविरतसम्यक्त्व नामक चौथे गुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका उदय न।

गुणस्थान तक ही होता है, इससे आगे पांचवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक इनका उदय नहीं पाया जाता है। ऐसी प्रकृतियाँ सत्रह हैं और उनके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं।

(१) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (२) अप्रत्याख्यानावरण मान (३) अप्रत्याख्यानावरण माया (४) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (५) वैक्रियक शरीर (६) वैक्रियक आंगोपाङ्ग (७) नरकगति (८) नरकगत्यानुपूर्वी (६) देव गति (१०) देवगत्यानुपूर्वी (११) नरक आयु (१२) देव आयु (१३) मनुष्यगति (१४) तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य (१५) दुर्भग (१६) अनादेय (१७) अयशःकीर्ति नामकर्म।

सूत्रः—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुनित्येतरनिगोदाः प्रत्येकवनस्पतिद्वित्रिचतुः पञ्चेन्द्रियाजीवसमासाः ॥४॥

अर्थ— जीव समासके अनेक प्रकारों मेंसे एक प्रकार इस सूत्रमें बतलाया गया है। इसमें जीव समास के सत्रह भेद गिनाये गये हैं। भेदोंके अलग अलग नाम इस प्रकारसे हैं:—

(१) बादरपृथ्वी नामक जीवसमास (२) सूक्ष्मपृथ्वी (इसके तथा आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ नामक जीव समास" पद और जोड़ लेना चाहिये) ३ बादर अप, (जल) (४) सूक्ष्म अप, (५) बादर तेज (६)

सूक्ष्म तेज (७) बादर वायु (८) सूक्ष्म वायु (६) बादर नित्यनिगोद (१०) सूक्ष्मनित्यनिगोद (११) बादर इतर-निगोद (१२) सूक्ष्म इतरनिगोद (१३) प्रत्येकवनस्पति (१४) द्वीन्द्रिय (१५) त्रीन्द्रिय (१६) चतुरिन्द्रिय (१७) पंचेन्द्रिय ।

सूत्र.—अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभभयजुगुप्साहास्यरतिपुंवेदैःसह मोहनीयस्यसप्तदशबंधस्थानप्रकृतयः ॥५॥

अर्थः— सत्रह प्रकृति वाले मोहनीय कर्म के बंधस्थान की सत्रह प्रकृतियोंके नाम इस सूत्रमें गिनाये गये हैं । उनके अलग अलग नाम इसप्रकार हैं :—

१ अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध नामक मोहनीय बंधस्थान प्रकृति (इसी तरह आगेके नामोंके साथ भी नामक मोहनीय बंधस्थान प्रकृति भी पद जोड़ लेना चाहिये २ अप्रत्याख्यानावरणी मान (३) अप्रत्याख्यानावरणी माया (४)अप्रत्याख्यानावरणी लोभ [५]प्रत्याख्यानावरणी क्रोध [६] प्रत्याख्यानावरणी मान [७] प्रत्याख्यानावरणी माया(८)प्रत्याख्यानावरणीलोभ (६)संज्वलन क्रोध(१०)संज्वलन मान (११) संज्वलन माया १२ संज्वलन लोभ १३ भय १४ जुगुप्सा १५ हास्य १६रति १७पुंवेद ।

सूत्रः—अरतिशोकपुंवेदैः सह च ।६।

अर्थः—सत्रह प्रकृति मोहनीयकर्म के बंधस्थान की प्रकृतियां

दूसरे तरह से भी बन सकती हैं। सत्रह प्रकृतियों का दूसरा प्रकार इस सूत्र में बताया गया है। वह इस तरह से है:-

इससे पूर्व सूत्रमें जो सत्रह प्रकृतियाँ गिनाई गई हैं उनमेंसे प्रारम्भकी चौदह प्रकृतियाँ वहाँ की वही और अंतिम प्रकृतियोंके स्थानपर अरति, शोक और पुंवेद नामके तीन प्रकृतियां जोड़ लो तो सत्रह प्रकृतियां बंधस्थान की हो जाती हैं। अलग अलग नाम संक्षेपमें यों हैं:-(१, ४) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोधमानमायालोभ (५, ८) प्रत्याख्यानावरणी क्रोधमानमायालोभ [९, १२) संज्वलन क्रोध मानमायालोभ [१३] भय १४ जुगुप्सा १५ अरति १६ शोक १७ पुंवेद।

सूत्र—आवीचिका,तद्भवावध्यान्त,बाल,पंडितामन्नबालपंडित मशल्य,पलायपमार्तविप्राणगृद्धपृष्टभक्तप्रत्याख्यानगमी प्रायोपगमनकेवलिभरणानि मरणानि ।७।

अर्थ:-मरणका अर्थ प्राणोंके वियोग सम्बन्धित है। जब किसी कारण वश या आयुष्य समाप्तिके कारण प्राण छूट जाते हैं तो वे प्राणी मरा हुआ कहलाता है। इसके परिणाम स्वरूप प्राणीको नई पर्याय धारण करनी पड़ती है अतः नवीन पर्याय धारणको भी मरण कहते हैं। मरणके सत्रह भेद इस सूत्रमें गिनाये गये हैं। नाम अलग अलग इस प्रकारसे है—

(१) आवीचिका मरण [२] तद्भव (३) अवधि-मरण (४) आद्यन्त मरण (५) बाल मरण (६) पंडितमरण (आसन्न मरण (८) बाल पंडित मरण [६] सशल्य मरण [१०] पलाय मरण [११] वशआर्तमरण [१२ विप्राण मरण १३ गृद्धपृष्ट मरण १४ भक्त प्रत्याख्यानगमन मरण १५ इंगिनी मरण १६ प्रायोपगमन मरण १७ केवलि या पंडित पंडित मरण ।

१ आवीचिका मरणः- आवीचिका अर्थ समुद्र तरंग है समुद्र तरंगके समान,आयु कर्मोदय प्रति पल पल करके घटता जाये और नष्ट हो जाये जो ऐसे मरणको आवी चिका या समय समय मरण कहते हैं ।

२ तद्भव मरण- वर्तमान पर्याय संबंधी शरीर का छूटजाना तद्भव मरण कहलाता है ।

३ अवधिमरण :- जैसा मरण (शरीर त्याग) वर्तमान पर्याय का हुआ है वैसा ही शरीरत्याग आगामी पर्याय का होना अवधि मरण कहलाता है ।

(४) आद्यन्तमरणः- वर्तमान पर्याय की स्थिति आदिक का जैसा उदय था वैसा बंध अथवा उदय चाहे वह सर्वथा हो या एक देश हो - आगामी पर्यायमें नहीं होते हुए मरण होना आद्यन्तमरण कहलाता है ।

(५) बालमरण- अविरत सम्यग्दृष्टिका मरण इस

कोटि का होता है।

(६)पंडित मरण– छट्ठे आदि गुणस्थानवर्ती मुनि का पूर्ण सावधानी और सत्क्रिया सहित जो मरण होना है वह पंडित मरण कहलाता है।

(७) आसन्न मरण:- जो जैन साधु संघसे भ्रष्ट होकर बाहर निकल गया हो ऐसे स्वच्छन्द, कुशील और संसक्त साधु का मरण इस नाम पुकारा जाता है। आसन्न काअर्थहै निकट भूतमें भ्रष्ट शिथिलाचारी व्रत सम्पन्न साधु।

[८]बाल पंडितमरण:-पंचम गुणस्थानमें पाये जाने वाले व्रती श्रावकका मरण बालपंडितमरण कहलाता है

[६] सशल्य मरण:-माया मिथ्यादर्शन और निदान तीन शल्यें पाई जाती हैं इन तीनों या तीन में से किसी एक शल्य सहित मरण होना सशल्य मरण कहलाता है। ऐसा मरण अशुभ हुआ करता है।

१० व्रत सन्याससे च्युत होकर मरण करना पलाय मरण है

विषय व कषाय के कारण

११वश आर्तमरण:– आर्त दुखी परिणामोंसे शरीर को त्याग देना आर्तमरण कहलाता है।

१२ विप्राण:– जो अपने व्रत क्रिया चारित्र आदि में उपसर्ग आनेपर सह सकनेकी असमर्थता का अनुभवकर

रहा हो साथ ही भ्रष्ट होनेके भयसे अन्नपानका त्याग कर मरण को वरण करने के लिये प्रयत्न कर रहा ऐसे साधु के मरण विप्राणमरण कहलाता है। अर्थात् इसमें अन्नपानादिकका त्याग कर शरीर ममत्व घटा देता है। अंतमें मरण को ही श्रेयस्कर समझ उस ओर परिणामों को दृढ करता है।

१३ गृद्धपृष्ठमरणः- शस्त्रादि के झपट्टामार आक्रमण से शरीर त्याग कर देना गृद्धपृष्ट मरण है।

(१४) भक्तप्रत्याख्यान मरणः- यह एक तरह का समाधिमरण है इसमें भोजनसे और शरीरसे ममत्व के लिहाज से भोजन की मात्राको कमसे कम कम करते हुए अंत में शरीर त्याग कर देना होता है यह भक्तप्रत्याख्यान मरण कहलाता है।

(१५) इंगिनी मरण- जो साधु संघ से निकलकर एकाकी हो एकान्त स्थान में जाकर यावज्जीवन चारप्रकार के आहारों के त्याग की प्रतिज्ञा कर समाधिमरण करे तथा जो अपने शरीर से अपना उपचार तो करे परन्तु दूसरों से अपनी सेवा न करावे ऐसे साधु के मरण को इंगिनी मरण कहते हैं। उपसर्ग आने पर तो साधु भी स्वयं स्वयं का उपचार नहीं करता। इसके धारण की समता वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच संहनन के

धारियों में होती है।

(१६) प्रायोपगमन मरणः- यह भी समाधि मरण का एक प्रकार है इसमें साधु न तो आप अपना इलाज, वैयावृत्यादि करता है और न दूसरों से ही कराता है वह तो ध्यान में लवलीन हो अचल और स्थिर हो जाता है जब तक शरीर नहीं छूटता तब तक इसी दशा में रहता है

केवलि मरणः- केवलि भगवान का शरीर त्याग कर निर्वाण भूमि जा विराजमान हो जाना केवलिमरण कहलाता है। इसे पंडित पंडित मरण भी कहते हैं।

सूत्रः- परोपकारिशीलव्रतिभावितात्मतपस्विगर्हणधर्मविध्वंसनतदन्तरायकरणशीलगुणदेशसंयमसकलसंयमप्रच्यावनविरतिचित्तभ्रममायादनुचारित्रसंदूषणसंक्लिष्टलिङ्गसंक्लिष्टव्रतधारणस्वपरकषायोत्पादनजातीयाः कषायवेदनीयाश्रवहेतवः ॥८॥

अर्थः— सत्रह बातें ऐसी हैं जिनसे कषाय वेदनीय सम्बन्धी कर्मपरमाणुओंका आश्रव होता है अर्थात् उन परमाणुओंका इन परिणामों से आकर्षण होता है और वे खिंचकर आत्मासे बंध जाते हैं। सत्रह बातोंके अलग-अलग इस प्रकार हैं:-

[१] परोपकारीगर्हण नामक आश्रव हेतु [२] शीलधारी गर्हण (३) व्रति गर्हण ४ भावितात्मा गर्हण ५ तपस्वी गर्हण ६ धर्मविध्वंसन ७ धर्म-अंतराय करण ८

शीलप्रच्यावन ९ गुणप्रच्यावन १० ऐश्वर्यमप्रच्यावन ११ मकलसंयमप्रच्यावन १२ विरतिचित्तभ्रम–आपादन १३ चारित्र संदूषण १४ संक्लिष्ट लिङ्गधारण १५ संक्लिष्ट व्रत धारण १६ स्वकषायोत्पादनजाति १७ परकषायोत्पादन जाति।

१ परोपकारी गर्हण नामक आश्रव हेतुः- दूसरे की भलाईमें लगेहुए व्यक्तियोंकी झूंठी निंदा या बुराई, करना या उड़ाना

२ शीलधारी गर्हण नामक आश्रवहेतुः- शील एवं सदाचारमें सम्पन्न सज्जनपुरुषों की बुराई करना, उन के विषयमें मिथ्या प्रवाद फैलाना शील धारी गर्हण कहलाता है।

३ व्रती गर्हणः- जो हिंसादिक पांच पापों की विरतिरूप व्रतों का परिपालन करे उन्हें व्रती कहते हैं, उनके विषय में बिना किसी के आधार के झूठी बुराई करना व्रती गर्हण कहलाता है।

४ भावितात्मा गर्हणः- आत्म चिंतन और आत्म मनन में लगे रहने वाले मानवोत्तमों की गर्हण करना भावितात्मगर्हण कहलाता है।

५ तपस्वी गर्हणः- छह प्रकार के बाह्य और छह प्रकार के अंतरंग तप को तपने वाले तपस्वी पुरुषों की नि-

दा करना।

६ धर्मविध्वंसन नामक आश्रवहेतुः– धार्मिक साधनों और उसकी प्रभावना करने वाली बातों को नष्ट भ्रष्ट कर देना धर्मविध्वसन कहलाता है।

७ तदन्तराय करण आश्रव हेतुः–धार्मिक कार्यों, क्रियाओं और साधनों में विघ्न डालना कषाय वेदनीय का कारण है।

८ –शीलप्रच्यावनः– अपने मन और इन्द्रियों को संयमित कर सदाचार पूर्वक रहने वाले व्यक्ति को शील से चलायमान करना उसके परिणामों में डगमगाहट पैदा कर विमुख बना देना।

९ गुणप्रच्यावनः–गुणमें अर्थ जहाँ विनय, क्षमा भद्रपरिणामिता आदि का है वहीं तीन गुणव्रतों परिपालन भी सन्निहित है। ऐसे व्यक्ति को गुणों के धारण से विमुख कर देना।

१० देशसंयमप्रच्यावनः– श्रावकके बारह व्रतों को देशसंयम कहते हैं इस संयमके धारक पुरुषकी परणतिमें शिथिलताके भाव पैदाकर उसे विषय पथ का पथिक बना देना।

११ सकलसंयमप्रच्यावन– मुनिधर्मको जो कि अट्ठाईस मूल गुण वाला है, सकलसंयम कहते हैं। उस

संयमकी साधनामें सन्नद्ध साधुको अपने मार्गसे हटा कर पतनकी ओर अग्रसर कर देना सकलसंयम प्रच्यावन कहलाता है।

१२ विरतचित्तभ्रम-आपादनः- ऐसे प्राणीके या जो संसारके विषय भोगोंको निःसार समझ रहा है जीवनको क्षणिक मान वैराग्य परिणामोंको धारण करने के लिये समुद्यत हो रहा, उसके विरागोन्मुख मनमें कुविचारोंको पैदाकर संसार फसाने की चेष्टा करना उसके हृदयको वैराग्यरूप परिणामोंसे विमुखकर उसकी स्थिति को डावाडोल कर देना भ्रमोत्पादन कहलाता है।

१३ चारित्र संदूषणः- चारित्र के आंङ्गोपाङ्गो को उनकी क्रियाओंको निरर्थक बना कहना कि यह सब ढोंग है, पाखंड है इस चारित्र से कष्ट के अलावा कोई लाभ नहीं है। इससे प्राणीका कुभला नहीं होने वाला इस तरह से समीचीन चारित्र में भूट मूंट दोष दिखलाना चारित्र संदूषण कहलाता है।

१४ संक्लिष्ट लिङ्ग धारणः--जिनमें क्लेशकी प्राप्ति होती है और वर्तमानमें भी संक्लेश उत्पादक है ऐसी वेश भूषा या लिङ्गका धारण करना कषाय वेदनीयके आश्रव का कारण होती है।

१५ संक्लिष्टव्रत धारणः- उदरपटांम ही आत्माको

अहितकी ओर अग्रमर करने वाले, व्रतों को धारण करता अथवा जो वर्तमान के संक्लेश पैदा करते हैं और आगे भी परिणाम स्वरूप जिनसे अशुभ फलकी प्राप्ति होनेवाली है ऐसे व्रतों को धारण करना।

१६–स्वकषायोत्पादन :–अपने परिणामों में क्रोध मान, माया, लोभ रूप परिणामों को पैदा कर यह प्राणी अपने लिये कषाय वेदनीय के कर्म परमाणुओं को एकत्रित करता रहता है।

१७–परकषायोत्पादन नामक आश्रव हेतु :– ऐसे कारणों, क्रियाओं और सामग्रीको जुटा कर इकट्ठी करना जिससे दूसरे को सहजमें ही कषाय पैदा हो जाय और विवेक रहित हो आवेशमें आ आकरणीय कामोंको करने में भी न हिचकिचावे।

सूत्र—मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि साता यशः कीर्ति रुच्चैर्गोत्रम दानलाभ भोगोपभोगवीर्यान्तरायाः सूक्ष्म साम्पराये बंधयोग्याः प्रकृतयः ॥६॥

अर्थः– सूक्ष्म साम्पराय नामक दशवें गुणस्थानमें बंध के योग्य सत्रह प्रकृतियोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं –

१–मतिज्ञानावरण। २–श्रुत ज्ञानावरण। ३–अवधिज्ञानावरण ४– मनःपर्ययज्ञानावरण ५–केवलज्ञाना-

दरण ये पांच ज्ञानावरणी संबंधी प्रकृतियां ६- चक्षुर्दर्शनावरण ७- अचक्षुर्दर्शनावरण ८- अवधिदर्शनावरण ९ केवलदर्शनावरण ये चार्दर्श...वरणी सम्बन्धी प्रकृतियां- १० सातावेदनीय ११- यश.कीर्ति नामक नाम कर्मप्रकृति यां १२ उच्चगोत्र १३ दानान्तराय १४- लाभान्तराय १५ भोगान्तराय १६उपभोगान्तराय १७वीर्यान्तराय।

सूत्र— मनुष्या मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राविरतसम्यक्त्व देशसंयत प्रमत्ताप्रमत्तविरतापूर्वकरणोपशमकक्षपकानिवृत्तिकरणोपशमक क्षपके सूक्ष्मसाम्परायोपशमक क्षपकोपशान्तक्षीणकषाय सयोगायोगकेवलिषु ॥१०॥

अर्थ—म.ष्यसे तात्पर्य पर्याप्तसंज्ञीपंचेन्द्रिय मनुष्य से है। उसके आगे लिखे जाने वाले सत्रह स्थान पाये जाते हैं अर्थात् इन सत्रह स्थानों में होनेवाले परिणामोंकी संभावना या पा...ा मनुष्य में है। सत्रह स्थानों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) मिथ्यादृष्टि। (२) सासादन। (३) मिश्र। (४) अविरत सम्यक्त्व। (५) देश संयत। (६) प्रमत्त-विरत। (७) अप्रमत्त विरत। (८) अपूर्व करणोपशमक। (९) अपूर्व करण क्षपक (१०) अनिवृत्ति करण उपशामक। (११) अनिवृत्तिकरण क्षपक (१२) सूक्ष्म साम्पराय उपशामक। (१३) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक। (१४)

कषाय (१५) क्षीण कषाय । (१६) सयोगकेवली । (१७) अयोगकेवली । जैसा कि कहा जा चुका है इन सत्रह स्थानोंको मनुष्यमें प्राप्तकरनेकी योग्यता पाई जाती है।

सूत्र—पञ्चेन्द्रियाः ॥११॥

अर्थ—पञ्चेन्द्रियमें ग्रहण तिर्यंच मनुष्यादिका भी होता है, अर्थात् ये भी पन्चेन्द्रियमें शामिल हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पञ्चेन्द्रियों के ये सत्रह स्थान होते हैं । नाम वहीके वही है हैं जो पूर्व सूत्र [दसवें सूत्र] में गिनाये गये हैं। इनमें से पहिले सात नाम सात गुणस्थानों के हैं, इसी प्रकार अंतिम चार नाम चार गुणस्थानों [१४] उपशान्त कषाय । [१५] क्षीण कषाय । [१६] सयोग केवली और [१७] अयोग केवली के नाम हैं। बीच के छह नाम तीन गुणस्थान सम्बन्धी हैं— [८] अपूर्व करण उपशमक । [६] अपूर्व करण क्षपक । [१०] अनिवृत्ति करण उपशमक [११] अनिवृत्ति करण क्षपक [१२] सूक्ष्म साम्पराय उपशमक [१३] सूक्ष्म साम्पराय क्षपक ।

सूत्र—भव्याश्च ॥१२॥

अर्थ—भव्यसे प्रयोजन उन प्राणियोंसे हैं जिन में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि आत्माके स्वाभाविक गुणों

के पूर्णविकाशकी शक्ति हो। इन प्राणियोंके भी ये सत्रह स्थान हो सकते हैं। सत्रह स्थानोंमें होने वाले विशुद्धि रूप परिणाम अभव्य में हो ही नहीं सकते। ऐसे परिणाम सिर्फ भव्य में ही पैदा हो सकते हैं। इसी लिये इन जीवोंका अलग रूपसे कथन किया गया है। पूर्व लिखित नाम वाले ही ये सत्रह स्थान हैं, अन्य नहीं।

(अपूर्ण)

अठारहवां अध्याय

सूत्र—आत्मपरोभयस्थानि दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनानि वेदनीयास्रव हेतवः ॥१॥

अर्थ—वेदनीयसे इस सूत्रमें असातावेदनीयका तात्पर्य समझना चाहिये। उन बातों का उल्लेख इसमें किया गया है जिनसे असातावेदनीय सम्बन्धी कर्म परमाणुओं का आश्रव होता है। ऐसी बातें अठारह हैं, नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं :—

१—आत्मस्थ-दुःख। २-आत्मस्थ-शोक। ३—आत्मस्थ-ताप। ४-आत्मस्थ-आक्रन्दन। ५-आत्मस्थ-वध। ६-आत्मस्थ-परिदेवन। ७-परस्थ दुःख। ८—परस्थ-शोक ९-परस्थ-ताप। १०-परस्थ आक्रन्दन। ११-परस्थ वध।

केलिये कारण भूत आयु प्राणका, रूप रस गंध आदि विषयोंके ग्रहण करनेके लिये निमित्तभूत इन्द्रिय प्राणोंका, काय आदि वर्गणाओंकी अवलम्बन भूत कायबल श्वासोच्छ्वासादि प्राणोंका हरण करना, इनका वियोग करना वध कहलाता है। यह भी अन्योंके समान तीन तरहका होता है और असातावेदनीयके आश्रवका कारण हुआ करता है।

६ परिवेदन नामक आश्रव हेतुः— संक्लेश परिणामोंसे युक्त होते हुए किसी व्यक्तिविशेषके, जिसने बहुत भलाई की थी, कठिनाईके समय सहारा दिया था आपत्ति के समय धैर्य बधाया था, रुपये पैसे दवादारु की सहायता दी थी, उसके गुणों का स्मरण कर उनका उल्लेख कर कर इस ढंगसे रोना जिसको सुन सुनने वालों का हृदय भी दयासे भर आवे, आखें डबडबा आवें और गला भर आवे, इस प्रकारके तथा ऐसे अन्य रुदनोंको परिदेवन में शामिल किया जाता है। इससे परिणामोंमें बहुत बेचैनी और आकुलता रहती है अतः इससे भी असाता वेदनीय संबंधी कर्म परमाणुओंका आत्माके साथ सम्बन्ध होता है।

सूत्र—कुमतिश्रुतावधिसुमतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिकदानलाभभोगोपभोगवीर्यसम्यक्त्वचारित्रसंयमासं-

यमाः क्षायोपशमिकभावाः॥२॥

अर्थः— त्रेपन असाधारण व सिर्फ जीव द्रव्यमें ही पाये जाते हैं अन्य पुद्गल धर्म अधर्मादि द्रव्योंमें इनका सद्भाव नहीं पाया जाता है भावोंमें से क्षायोपमिकभावोंको यहां गिनाया जारहा है। इनको क्षायोपशमिक इसलिये कहते हैं कि इनके होने में कर्मसे कुछ कर्म प्रकृतियोंके क्षय और कुछके उपशम की आवश्यकता होती है। क्षायोपशमिक भावों के नाम जिनकी कि संख्या अठारह हैं अलग अलग इस प्रकार हैः-

१ कुमतिज्ञान नामक क्षायोपशमिक भाव इसीप्रकार आगेके नामोंमें भी नामक क्षायोपशमिकभाव पद जोड़ लेना चाहिये २ कुश्रुतज्ञान ३ कुअवधिज्ञान ४ सुमतिज्ञान ५ सुश्रुतज्ञान ६ सुअवधिज्ञान ७ मनःपर्ययज्ञान ८ चक्षुर्दर्शन ९ अचक्षुर्दर्शन १० अवधिदर्शन ११ क्षायोपशमिक दान १२ क्षायोपशमिक लाभ १३ क्षायोपशमिक भोग १३ क्षायोपशमिक उपभोग १५ क्षायोपशमिक वीर्य १६ सम्यक्त्व १७ चारित्र १८ संयमासंयम।

सूत्रः— केवलमनःपर्ययावधिज्ञानबीजकोष्ठस्थोपमपदानुसारीसंभिन्नश्रुतिस्पर्शनरसनघ्राणदर्शनबुद्धिप्रज्ञाश्रमणाष्टाङ्गनिमित्तविमदशसर्वपूर्विप्रत्येकबुद्धिवादित्वक्रियाविबुद्धद्धयः॥३॥

अर्थ–ऋद्धि शब्दके द्वारा आत्मामें प्रगट होने वाली

शक्ति विशेषका बोध होना यह शक्ति विशेष साधुओं को तपोंको तपनेसे प्राप्त होती है ऋद्धिके सात भेद होते हैं उनमेंसे बुद्धि ऋद्धि के अठारह भेदोंको इस सूत्रमें गिनाया गया है। नाम बुद्धि ऋद्धियों के अलग अलग इस प्रकार हैं।

१ केवलज्ञान नामक बुद्धि ऋद्धि २ मनःपर्यज्ञान इसमें और आगे लिखे जाने वाले नामों में नामक बुद्धि ऋद्धि पद जोड़ लेना चाहिये ३ अवधिज्ञान ४ बीज ५ कोष्टस्थोपम ६ पदानुसारी ७ संभिन्न श्रुती ८ श्रवणेन्द्रिय ९ स्पर्श १० रस ११ घ्राण १२ दर्शन १३ प्रज्ञाश्रमणत्व १४ अष्टाङ्गनिमित्तविज्ञता १५ दशपूर्व १६ सर्वपूर्वविज्ञता १७ प्रत्येक बुद्धि १८ वादित्व।

१ केवलज्ञान नामक बुद्धि ऋद्धि :- तप के प्रभावसे आत्मामें ऐसी बुद्धि या ज्ञान हो जाना जिससे तीनों लोकोंमें स्थित समस्त पदार्थों एवं उनकी त्रिकाल वर्ती समस्त पदार्थों का परिज्ञान हो जाय।

२ मनःपर्ययज्ञान नामक बुद्धि ऋद्धि:-- आत्मामें तपस्या के बलसे ऐसे ज्ञानका होजाना जिससे दूसरेके मन में स्थित विचारोंकी भी विशद रूपसे जानकारी प्राप्त हो जाय। इतना अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि इसके होनेमें केवलज्ञानके होनेमें तथा अवधिज्ञानके होनेमें इन्द्रिय

और मनके साहाय्यकी आवश्यकता नहीं होती है।

(३) अवधिज्ञान नामक बुद्धि ऋद्धिः- यह भी एक शक्ति विशेष आत्मामें तपस्याके प्रभावमें पैदा होती है। इससे बिना इन्द्रियों और मन की सहायताके आत्मा सीमित क्षेत्रके रूपी पादर्थोंको एवं उनकी सीमित भूत भविष्य कालीन पर्यायोंको विशद रूपसे जानती है।

(४) बीजबुद्धिनामक ऋद्धिः- इससे आत्मा एक बीज रूप अक्षरके ग्रहणसे, उसकी जानकारीसे, अनेक पदार्थोंके जाननेकी सामर्थ्य रखने वाली हो जाती है।

(५) कोष्टस्थोपम बुद्धि नामक ऋद्धिः-जैसे कोठारमें अनेक प्रकारके धान्योंका संग्रह रहता है और आवश्यकता पड़नेपर मनचाहा अनाज उसमेंसे निकाल लिया जाता है इस प्रकार इस ऋद्धिसे आत्मामें अनेक पदार्थोंका अलग अलग ज्ञान रहता है आवश्यकता पड़नेपर जब चाहे जिस चाहे पदार्थके ज्ञानको स्मरण कर जान लेता है।

(६) पदानुसारीबुद्धिनामक ऋद्धिः- इससे तपो विशिष्ट साधुकी आत्मामें सामर्थ्य पैदा हो जाती है कि वह एक पद को सुन और ग्रंथको, उसके रहस्यको जान लेता है।

(७)संभिन्नश्रुति नामक बुद्धि ऋद्धिः-आत्मामें इससे सामर्थ्य पैदा हो जाती है कि वह बारह योजन लम्बे नौ

योजन चौड़े क्षेत्रमें पाये जाने वाले समस्त मनुष्य.के और भिन्न भिन्न प्रकारके पशुओंके यदि एक साथ और एक समयमें शब्द हों तो उनको यह (आत्मा) अलग अलग करके समस्त शब्दों और ध्वनियोंको जान लेवे ।

(८) श्रवणनामक बुद्धि ऋद्धिः– इस ऋद्धिके प्रभाव से आत्मा, जितना श्रोत्रेन्द्रियका उत्कृष्ट विषय रहता है, उसके जाननेकी सामर्थ्य रहती है उससे भी अधिक दूरवर्ती पदार्थोंको विषय करने लगती है ।

९ स्पर्शनामक बुद्धिऋद्धि :—इसके कारण ऋद्धि विशिष्ट आत्मा की स्पर्शन इन्द्रिय की शक्ति बढ़ जाती है अर्थात जितना स्पर्शन इन्द्रियका विषय है उसके भी अधिक विषय करने वाली वह होजाती है ।

१० रसन नामक बुद्धिऋद्धिः-इस ऋद्धिसे युक्त साधु तपस्वीकी इन्द्रिया नौ नौ योजन के बाहर भी पाये जाने वाले पदार्थों के स्वाद जानने वाली हो जाती है । अर्थात उसमें सामर्थ्य पैदा हो जाती है कि जो उत्कृष्ट क्षेत्र अवधि है उससे भी बाहर के पदार्थों का स्वाद मालूम कर लेवे

११ घ्राण नामक बुद्धि ऋद्धि के प्रभाव से साधुकी नासिका अन्य इन्द्रयों के समान अपने उत्कृष्ट नियम क्षेत्र विषयके बाहरके पदार्थोंकी सुगंध दुर्गंधका ज्ञान करने लग

नी है। उसकी सामर्थ्यमें वृद्धि हो जाती है।

दर्शन नामक बुद्धि ऋद्धिः--इसके निमित्तसे आत्माकी देखनेकी शक्ति बढ़ जाती है साधारण तथा जो नेत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय होता है उससे भी बाहर के पदार्थोंके देखनेकी सामर्थ्य इस ऋद्धिके प्रभावसे हो जाती है।

१३ प्रज्ञाश्रमण नामक बुद्धि ऋद्धिः-- इस ऋद्धि के प्रभावसे साधु उन शास्त्रोंका भी समझने वाला बन जाता है जिनको कि उसने पढ़ा नहीं है तात्पर्य यह है कि चौदह पूर्वोंको पढ़ा नहीं है तो भी चौदहपूर्वका सारा यदि कोई पद कहे तो उसे संदेह रहित समझनेकी प्रज्ञावाला वह हो जाता है। उसकी बुद्धि अबाधरूपसे उसमें प्रवेश करती है

१४ अष्टाङ्ग निमित्त विज्ञता नामक बुद्धिः-- इससे आत्मा अष्टाङ्गनिमित्तशास्त्रोंको जानने वाली हो जाती है।

१५ दशपूर्वविज्ञातानामक बुद्धि ऋद्धिः-- यह तप के प्रभावसे आत्मामें प्रगट होनेवाली बुद्धि संबंधी ऋद्धि है इसके निमित्त से आत्मा दशपूर्वका ज्ञाता हो जाता है।

१६ सर्व पूर्व विज्ञाता नामक बुद्धि ऋद्धिः-- इससे आत्मा चौदह पूर्वोंकी यथा सकल श्रुतज्ञानकी जानने वाली ज्ञान रखने वाली हो जाती है।

प्रत्येकबुद्ध नामक बुद्धि ऋद्धिः—इस बुद्धि (ज्ञान) संबंधी ऋद्धिके निमित्तसे आत्मा विना किसी दूसरे प्राणीके

उपदेशके म्वयं अपनी बुद्धिसे मंदेह दूर कर लेती है और चारित्र विषयक ज्ञान प्राप्त कर तदनुकूल चारित्रका आचरण करने लग जाती है।

(१८) वादित्वनामक बुद्धि ऋद्धिः— इसके निमित्त आत्मा ऐसा ज्ञानविशिष्ट हो जाता है कि वह वादविवाद में प्रतिवादीको निरुत्तर कर देता है या कर दिया करता है। हमेशा ऋद्धि विशिष्ट माधु का ही पक्ष प्रवल रहता है यह अठारह ऋद्धियों का विवेचन है जो कि बुद्धि (ज्ञान) विषयक है।

सूत्रः— आर्यम्लेच्छखंडजलस्थलनभश्चारिपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताः कर्मभूमिजसम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवसमासाः॥४॥

इस सूत्रमें कर्मभूमिमें पैदा होनेवाले मम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवोंके जीवसमास गिनाये जारहे हैं। जीव समासोंकी संख्या अठारह है और उनके अलग अलग नाम यों हैं:

१-६ जल चारि तिर्यंच संबंधी छह जीवसमास

२ आर्यखंडस्थ जलचारि पर्याप्त २ आर्यखंडस्थ जलचारि निर्वृत्त्यपर्याप्त ३ आर्यखंडस्थ जलचारि लब्ध्य पर्याप्त ४ म्लेच्छखंडस्थ जलचारि पर्याप्त ५ म्लेच्छ खंडस्थ जलचारि निर्वृत्यपर्याप्त ६ म्लेच्छ खंडस्थ जलचारि लब्ध्य पर्याप्त।

७-१२ स्थलचारि स० तिर्यंच सम्बन्धी छह जीव समासः—

(७)आर्यखंडस्थ स्थलचारि पर्याप्त (८)आर्यखंडस्थ स्थलचारि निवृत्यपर्याप्त (९) आर्यखंडस्थ स्थलचारि लब्ध्यपर्याप्त (१०) म्लेच्छ खंडस्थ स्थलचारि पर्याप्त (११) स्थलचारि म्लेच्छ निवृत्यपर्याप्त (१२) म्लेच्छखंडस्थ स्थलचारि लब्ध्यपर्याप्त ।

[१३-१८] नभश्चारि सम्मूर्च्छन तिर्यंच-संबंधी ६ जीवसमास १३ आर्यखंडस्थ नभश्चारिपर्याप्त १४ आर्यखंडस्थ नभश्चारि निवृत्यपर्याप्त १५ आर्यखंडस्थनभश्चारि लब्ध्यपर्याप्त १६ म्लेच्छखंडस्थ नभश्चारि पर्याप्त १७ म्लेच्छखंडस्थ नभश्चारि निवृत्यपर्याप्त १८ म्लेच्छखंडस्थ नभश्चारि लब्ध्यपर्याप्त।

सूत्र—जन्ममृत्युजराक्षुत्तृष्णाविस्मयारतिखेदरोगशोकमदमोहभयनिद्राचिन्तास्वेदरागद्वेषाः दोषाः ॥४॥

अर्थ—दोषमे प्रयोजन वाह्य और अंतरंग विकारों या खराबियोंसे है। प्रत्येक आत्मा जबतक वह संसार में कर्ममल सहित है तबतक वह इन दोषोंसे युक्त रहती है दोषोंके नाम ये हैं:—

१ जन्म २मृत्यु ३ जरा ४क्षुधा ५ तृषा ६ विस्मय ७ अरति ८ खेद ९ रोग १० शोक ११ मद १२ मोह १३ भय १४ निद्रा १५ चिन्ता १६ स्वेद १७ राग १८ द्वेष

१ जन्म नामक दोषः— अगला भव धारण करना

२ मृत्यु नामक दोषः— जन्मकारक मरण होना, पूर्वपर्यायका नाश होना।
३ जरा नामक दोषः— आयु क्षीणताके साथ साथ शक्तिका ह्रास होना।
अर्थात् अंगोंका शिथिल हो जाना, केशोंका श्वेत होजाना दाँतोंका गिर जाना चेहरे और शरीरमें झुर्रियां पड़जाना बुढ़ापा आजाना।
४ क्षुधा नामक दोषः— भूखकी बाधासे उदरदरीके भरनेकी इच्छा होना।
५ तृषा नामक दोषः— प्यासकी तकलीफसे दुःखित होना।
६ विस्मय नामक दोषः— आश्चर्यके मारे भौंचक्के रह जाना।
७ अरति नामक दोषः— अनिष्ट देश विषयादिकका संयोग होनेसे मनमें उससे दूर हटनेके भाव होना, विकलता बनी रहना।
८ खेद नामक दोषः— शारीरिक फोड़ा फुंसी आदि की पीड़ा चित्त में विकलता होना।
९ रोग नामक दोषः— वात पित्त कफकी विषमता के कारण शरीरमें अस्वस्थाका होना रोग का होना।
१० शोक नामक दोषः— मित्र, बांधव स्नेही पारि-

वाग्कि उपकारी जनोंका संबंध विच्छेद होनेपर विकलताका होना ।

११ मद नामक दोपः– अपनेमें पाये जाने वाले वल, विद्या तप, जाति, कुल, रूप, आदिका घमंड होना ।

१२ मोह नामक दोपः– पर पदार्थोंको अपना समझ उनमें ममकार "ये मेरे है" की भावना होना

१३ भय नामक दोपः– मनमें जिसके निमित्तसे उद्वेग रूप परिणाम हो उसे भय कहते है । यह सात प्रकार का होता हो ।

१४ निद्रा नामक दोपः– मद और खेदसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेकेलिये सोने की इच्छा होना ।

१५ चिन्ता नामक दोपः– मनमें इष्ट वियोगादिक के कारण अनुतापयुक्त परिणामोंका होना ।

१६ स्वेद नामक दोपः– परिश्रमादिके कारण शरीर से पसीने का निकलना । वस्तुतः अंतरंगमें पाये जाने वाला शारीरिक विकार विकार है जो इस रूपसे बाहर निकलता है ।

१७ रागद्वेप नामक दोपः– इन्द्रियोंके विषय भोगोंके प्रति अभिलाषा या अनुराग भाव होना ।

१८ द्वेप नामक दोपः– अनिष्ट और अन अभीप्सित वस्तुओंके संयोग होनेपर उनके प्रति वैर भावका होना

इन दोषोंका सर्वथा अभाव श्री जिनेन्द्र देवमें पाया जाता है इनके अभाव हुए बिना जिनेन्द्रत्व नहीं आ सकता और न पूज्यता ही प्राप्त हो सकती है।

सूत्रः— प्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहक्रोधमानमायालोभ रागद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशून्यपरपरिवादरत्यरतिमायामोषामिथ्यादर्शनशल्यानि पापानि ।६।

पापसे प्रयोजन उन क्रियाओं एवं परिणामों से है जो आत्माको हमेशा शुभ परिणामों से बचाये रखने अर्थात् आत्मामें शुभ भावको पैदा न होने देवे ऐसे पाप कर्म अठारह होते हैं उनके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं।

१ प्राणातिपात नामक पाप २ मृषावाद (इसके साथ और आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ पहिले नामके समान "नामक पाप" पद जोड़ लेना चाहिये (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभ १० राग ११द्वेष १२ कलहाभ्याख्यान १३ पैशून्य १४ परपरिवादरति १५ अरति १६ मायाशल्य १७ मोष शल्य १८ मिथ्यादर्शन शल्य ।

१ प्राणातिपात हिंसा नामक पापः— शराबी के समान कार्याकार्य का कुछ विवेक न करते हुए इन्द्रियों एवं योगोंकी प्रमादपूर्वक प्रवृत्तिसे प्राणियोंके प्राणोंका

आघात पहुंचाना, उनका अपहरण करना हिंसा नामक पाप है। यह जन्म जन्मान्तरों तकके लिये वैर भाव पैदा कर देती है।

२ मृषावाद असत्य नामक पापः— प्राणीको पीड़ा पैदा करने वाले वचनोंको असत या अप्रशस्त कहते हैं ऐसे वचनोंको चाहे वे विद्यमान पदार्थको विषय करें चाहे अविद्यमान पदार्थको कहना मृषावाद असत्य नामक पाप है।

३ अदत्तादान चोरी नामक पापः— जिस वस्तुमें आदान प्रदान व्यवहार होता है उसे विना स्वामीकी अनुमति प्राप्त किये ले लेना या उसको विना दिये ग्रहण कर लेना चोरी है। इसको अदत्तादान पाप कहते हैं।

४ मैथुन नामक पापः— चारित्र मोहनीय कर्मके उदय रहते हुए राग परिणामोंसे युक्त स्त्री पुरुषोंको आपसमें एक दूसरे से आलिंगन या चिपटनेकी इच्छा का होना मिथुन कहलाता है तथा उससे युक्त कर्मको मैथुन नामक पाप कहते हैं।

५—परिग्रह नामक पापः— गाय, भैंस, हीरा, पन्ना, मोती आदि बाह्य चेतन और अचेतन पदार्थोंमें तथा अंतरंगमें पाये जाने वाले रागद्वेषादिक उपाधियोंमें ममता का भाव होना। -उनके संरक्षणमें, इकट्ठे करनेमें लगे रहना

परिग्रह नामक पाप है।

६–क्रोध नामक पापः– स्व घात एवं परघातके करने वाले अहितकारी क्रूरतासे भरे भ्रमरूप परिणामोंको क्रोध कहते हैं। इसके आवेशमें आ प्राणी अपने क्षमा गुणको ताकमें रख विवेक बुद्धिको नष्ट कर डालता है।

७ मान नामकः– जाति कुल वपु विद्या तप आदि के गर्वसे अन्धे हो अविनय रूप परिणामोंका होना दूसरों को अपनेसे तुच्छ और ओछा समझना मान पाप है।

८ माया नामक पापः— दूसरेको ठगना या उसके रहस्यको ज्ञान करनेकी गरजसे, कुटिलतासे परिपूर्ण परिणामोंको करना माया नामक पाप है इसीको छल वंचना आदि कहते हैं इसके रखने वालेके मन वचन और कायों की क्रियाओंमें साम्य नहीं पाया जाता है।

६ लोभ नामक पापः– दूसरेकी कृपाका आकांक्षी होता हुआ परके द्रव्यादिक की प्राप्तिके लोलुपता से युक्त परिणामों को रखना लोभ नामक पाप है, सब पापोंका जन्म दाता, उकसाने वाला यही है। इसीके कारण प्राणी अनेकों अकृत्योंको कर डालता है। प्रायः गहनोंके लोलुपी व्यक्तियोंके द्वारा अबोध बच्चोंकी मृत्युके समाचार अखबारोंमें पढ़नेमें आते हैं। लोलुपी व्यक्ति असत्य भाषी मायावी और न जाने कितने दुर्गुणोंसे युक्त हो जाता है।

१० राग नामक पापः- इन्द्रिय विषय भोगों एवं कामुकताके साधनोंके प्रति मनोवृत्तिका होना उनसे अनुराग का होना राग नामक पाप कहलाता है।
११ द्वेष नामक पापः- मननुकूल पदार्थोंसे संसर्ग होते पर उनके प्रति वैर भावका होना द्वेष नामक पाप कहलाता है। इससे कभी कभी बड़ा भारी अपना अहित कर बैठती जिनकापरिणाम अनेक जन्म तक भोगना पड़ता है

१२ कलहाभ्याख्यान नामक पापः- ऐसी बातोंको या प्रकरणोंको खोलके रख देना जिससे आपस में मैं मैं तू तू लड़ाई झगडा होने लग जाय कलहाभ्याख्यान नामक पाप कहलाता है।

(१३) पैशून्य नामक पापः- पिशुनताके परिणाम का नाम पैशून्य है पिशुनता चुगलखोरीको कहते हैं। किसीको गुप्त वातको सुन अपनी नमक मिर्चा लगा लगा दूसरेसे कह देना और दूसरेकी बातको पहिले वाले से भिड़ा देना चुगलखोरी कहलाती है इसमें जहां कान भर लड़ानेकी नीच भावना निहित रहती है यह भी एक पाप है।

(१४) परपरिवादरतिनामक पापः- दूसरेकी संसार में हंसी या खिल्ली उड़ जाय दूसरेको समाजमें नीचा देखना पड़े उसकी निन्दा और थूथू होने लगे ऐसे

दिलचस्पी लेना और अवसर आने पर ऐसे कामोंके करने से पीछे भी न हटना परपरिवादरति नामक पाप कहला ता है।

(१५) अरति नामक पापः— अच्छे गुणों एवं स्व अवगुण प्रकाशनमें अनिच्छा व्यक्त करना अनिष्ट वस्तुके संयोग होने पर स्वयं के परिणामोंमें खेद खिन्नपना या उदासीनता आये उसे अरति नामक पाप कहते हैं।

मायानामक शल्यः-जैसे शरीरमें घुसा हुआ कांटा आदि तीक्ष्ण पदार्थ पीड़ा पहुंचाता रहता है। ठीक उसीके समान ऐसी मायावी प्रवृत्ति जो शारारिक और मानसिक पीड़ा को पैदा करे उसे माया शल्य कहते हैं इससे बहुत ज्यादा अशांतिका अनुभव होता है।

(१७)मोप नामक शल्यः— अगले भवमें मुझे अमुक अमुक तरहके विषय सुखको पूरा करने वाले साधन प्राप्त हों ऐसी तपस्या व्रत पालनदिके समय परिणाम करना उन भोगोंकी जिनके प्राप्त करनेका पुण्य ही नहीं है, वांछा करना,उन्हें चुरानेकी भावना करना मोष नामक शल्य है।

१७ मिथ्यादर्शन नामक शल्य :— जिन प्रतिपादित तत्त्वस्वरूपोंके प्रति अश्रद्धान होना और नाना प्रकारके विकारी परिणामोंको पैदा कर प्राणियोंके प्राणोंमें विकलता पदा कर देवे उसे मिथ्यादर्शन नामक शल्य कहते हैं। ये

ये अन्तिम तीन यद्यपि शल्य हैं किन्तु आत्माके शुभ कार्यों से, शुभपरिणामोंसे और शुभवचनोंसे हमेशा दूर बनाये रखते हैं अतः इनको पापों में गर्भित किया गया है।

सूत्रः— सेनावणिग्गणकदंडपतिमंत्रिमहत्तरतलवरब्राह्मणक्षत्रियवैश्य-शूद्रगजतुरंगरथपदातिपुरोहितामात्यमहामात्या दलश्रेणयः॥७॥

अर्थः— चक्रवर्तीकी आधीनतामें रहने वाले अनेक राजा अधिराजा, महाराजा, अर्धमंडलिक, मंडलिक, महा-मंडलिक, त्रिखंडाधिपति हुआ करते हैं। उनमें से राजाके लक्षणको बतलाते हुए कहा गया है कि वह श्रेणियों का अधिपति या स्वामी होता है और मुकुटधर होता है। अठारह दल श्रेणियोंके नाम इस सूत्रमें गिनाये गये हैं नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं :—

(१) सेनापति (२) वणिकपति (३) गणकपति (४) दण्डपति (समस्त सेनाओंका यह नायक होता है) (५) मंत्री (६) महत्तर (७) तलवर (८) ब्राह्मण (९) क्षत्रिय (१०) वैश्य (११) शूद्र (१२) गजसेना (१३) अश्वारोही सेना (१४) रथसेना (१५) पदातिसेना (१६) पुरोहित (१७) अमात्य (१८) महामात्य।

(१) सेनापतिः— सेनामें पाये जाने वाले विभागों के नायकोंको सेनापति या (Conwondart) कमान्डर कहते हैं। इनकी संख्या अनेकों में होती है।

(२) वणिकपतिः— राजाके यहां भोजन वस्त्रादिकी सामग्री मुहय्या करने वाला राजश्रेष्ठी यह होता है इसे राजमोदीके नामसे भी पुकार सकते हैं।

(३) गणकपति ज्योतिष एवं हिसाब किताबमें निपुण यह होता है आज कलके शब्दोंमें इसे Accowant-Jeneral अकान्टेंट जनरल कह सकते हैं।

(४) दण्डपतिः— यह समस्त सेनाओंका एक नायक हुआ करता था इसे आज कलके शब्दोंमें Comunadr in Chiaf, (कमांडर इन चीफ कह सकते हैं।

(५) मंत्रीः— पंचांग मंत्र [सलाह या परामर्श] देने में यह निपुण व्यक्ति होता है।

(६) महत्तर— कुलके वृद्ध [वयोवृद्ध] महानुभाव होते हैं।

[७] तलवर— असि आदि शास्त्रों के धारक कोतवाल अंगरक्षक होते हैं।

[८] ब्राह्मण वर्ण— विद्या एवं धार्मिक कृत्योंमें लगे रहने वाले।

[९] क्षत्रिय वर्ण—अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हो देश की रक्षामें लगे रहने वाले वीर पुरुष इसके अंतगर्त होतेहैं

[१०] वैश्य— मसि कृषि वाणिज्यादि के द्वारा अपना आजीविकाका अर्जन करने वाले इसमें गर्भित होते हैं।

(११) शूद्र वर्णः- उपरिलिखित तीन प्रकार के वर्णों की सेवा सुश्रूषा कर अपनी आजीवका चलाने वाले इसमें आते हैं।

(१२) गज सेनाः- हाथियों की सेना।

(१३) अश्वसेनाः- अश्वारोहियों [घुडसवारों] की सेना।

(१४) रथ सेनाः- रथारोहियों (रथमें चढ़ समर करने वालों) की सेना।

(१५)पदाति सेना पैदल चलनेवाले सिपाहियोंकी सेना

(१६) पुरोहितः-राजाके धार्मिक विधि विधानोंका कराने वाला, धर्मशास्त्रका वेत्ता यह होता है।

१७ अमात्य- राज्यके विभागों जिले आदिके शासनाधिकारी ये होते थे आज कलके शब्दोंमें इन्हें Admihistrats एडमिनिस्ट्रेटर कह सकते हैं।

१८ महामात्य- राजाके नीचे रहनेवाले शासन का सबसे बडा अधिकारसम्पन्न व्यक्ति।

त्रः- बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुनित्येतरनिगोदाः प्रत्येकं शरीरद्वित्रि-चतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपंचेन्द्रिया जीवसमासाः॥८॥

(८) जीव- समासके अठारह भेद होते हैं नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं।

१ बादर पृथ्वी नामक जीवसमास- इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ "नामक जीवसमास"

पद जोड़ते जाना चाहिये २सूक्ष्म पृथ्वी ३बादर अप (जल) ४ सूक्ष्म अप ५ बादर तेज [आग] ६ सूक्ष्म तेज ७ बादर वायु ८ सूक्ष्म वायु ९ बादर नित्य निगोद १० सूक्ष्मनित्य निगोद ११बादर इतरनिगोद १२ सूक्ष्म इतरनिगोद १३ प्रत्येक वनस्पति १४ द्वीन्द्रिय १५ त्रीन्द्रिय १६ चतुरिन्द्रिय १७ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय १८ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय।

सूत्र— पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाः पर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ।६।

अर्थ— जीवसमासोंके अठारह भेद पूर्व सूत्रमें गिनाये गये हैं। ये अठारह भेद अन्य प्रकारोंसे भी बन सकते हैं, उन प्रकारोंमें से एक प्रकार इस सूत्रमें बनाया गया है। नाम इस प्रकारसे हैं:—

[१] पर्याप्त पृथ्वी नामक जीवसमास (२) अपर्याप्त पृथ्वी (इसके साथ तथा आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ " नामक जीव समास " पद जोड़ लेना चाहिये) (३) पर्याप्त अप [जल] (४) अपर्याप्त अप (५) पर्याप्त तेज (६) अपर्याप्त तेज (आग) (७) पर्याप्त वायु (हवा) (८) अपर्याप्त वायु (९) पर्याप्त वनस्पति (१०) अपर्याप्त वनस्पति (११) पर्याप्त द्वीन्द्रिय (१२) अपर्याप्त द्वीन्द्रिय (१३) पर्याप्त त्रीन्द्रिय (१४) अपर्याप्त त्रीन्द्रिय (१५) पर्याप्त चतुरिन्द्रिय

(१६) अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय (१७) पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय (१८) अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय ।

सूत्र-पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताश्च ।१०।

अर्थ जीव समासोंके अठारह भेदोंकी उपपत्ति बिठाने का अंतिम प्रकार इस प्रकार है। भेदोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं।

१ पृथ्वी पर्याप्त नामक जीव समास २, पृथ्वी निर्वृत्य पर्याप्त ३, पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त, ४ अप पर्याप्त, ५ अप निर्वृत्यपर्याप्त, ६ अप लब्ध्यपर्याप्त, ७ तेज पर्याप्त, ८ तेज-निर्वृत्यपर्याप्त, ९ तेज लब्ध्यपर्याप्त, १० वायुपर्याप्त, ११ वायु निर्वृत्यपर्याप्त, १२ वायु लब्ध्यपर्याप्त, १३ वनस्पति पर्याप्त १४ वनस्पति निर्वृत्यपर्याप्त १५ वनस्पति लब्ध्यपर्याप्त १६ त्रस पर्याप्त १७ त्रस निर्वृत्यपर्याप्त १८ त्रस लब्ध्यपर्याप्त ।

सूत्र:- जघन्यमध्यमोत्कृष्टोभयगुणिताःकृष्णनीलकापोतपीतपद्मशुक्लशुक्ललेश्या लेश्यांशाः॥११॥

अर्थ-कषायोंसे अनुरंजित जो योगोंकी प्रवृत्ति होती है उसे लेश्या कहते हैं। इनकी संख्या छह है, अर्थात् लेश्याके छह भेद हैं। छह भेदोंको जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट इन तीनसे गुणित करदें तो लेश्याओंके अठारह प्रकार हो जायेंगे। इन्हींको लेश्यांश कहते हैं कारण कि ये

लेश्या न होते हुए लेश्याके अंश या हिस्से होते हैं । लेश्यांशोंके अलग अलग नाम यों हैं ।

१ जघन्य कृष्ण लेश्यांश २, मध्यम कृष्ण लेश्यांश, ३उत्कृष्ट कृष्ण लेश्यांश, ४ जघन्यनील लेश्यांश ५ मध्यम नील लेश्यांश, ६ उत्कृष्ट नील लेश्यांश, ७ जघन्य कापोत लेश्यांश, ८ मध्यम कापोत लेश्यांश, ९ उत्कृष्ट कापोत लेश यांश, १० जघन्य पीत लेश्यांश, ११ मध्यम पीत लेश्यांश, १२ उत्कृष्ट पीत लेश्यांश १३, जघन्य पद्म लेश्यांश, १४मध्यम पद्म लेश्यांश, १५ उत्कृष्ट पद्म लेश्यांश, १६जघन्य शुक्ल लेश्यांश, १७ मध्यम शुक्ल लेश्यांश, १८ उत्कृष्टशुक्ल लेश्यांश — सूत्र एकान्तात्सालोकानतिदूरेनासन्नाविस्तीर्णाविध्वस्ताद्दढापावना ऽविलाऽक्षरिता सोद्योतासमाऽस्निग्धानिर्जन्तुरजाऽविघ्नदानिर्दयाग्रामतो नैऋतदक्षिणपश्चिमदिगन्यतरस्थत्वानि निषीधिकालक्षणानि ॥१२॥

अर्थः— निषीधिका वस्तुतः उस स्थानका नाम है जहाँ किसी व्रतसम्पन्न उच्च चारित्रधारी व्यक्तिने साधना की हो और उसी स्थानपर साधना करते २ बड़ी शांतिके साथ अपने जीवनके अंतिम दिनोंको पूरा करनेकी ठानी हो उस व्यक्तिकी संयम संबंधी साधना समुचित रूपसे सम्पूर्ण हो सके और शांति और साहसको रख सल्लेखनाको भी कर लेवे इसके लिये कोई कोठरी वसतिका आदि होना निषीधिका कहलाती है । ऐसी निषीधिका मृत्युके बाद उस

संयम प्रतिपालक सज्जनका स्मारकका भी काम देती है। इस सूत्रमें तो यह बतलाया गया कि निषीधिका और उसके संबंधसे पुकारी जाने वाली आसपासकी भूमि कैसी होनी चाहिये उसके कौन२ से खास लक्षण हैं। मोटे रूपमें निषीधिकाके अठारह लक्षण हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं।

१ एकान्ता नामक निषीधिका लक्षण २ सालोका ३ अनतिदूरा ४ अनासन्ना ५ विस्तीर्णा ६ विध्वस्ता ७ दृढा ८ पावना ९ आविला १० अहरिता ११ सोद्योता १२ समा १३ अस्निग्धा १४ निर्जन्तु १५ अरजा १६ अविचला १७ निर्बाधा १८ ग्रामसे नैऋत्य २ दक्षिण और ३ पश्चिम—तीन विदिशाओंमें से किसी एक विदिशामें स्थित होना।

१ एकान्ता नामक निषीधका लक्षणः— निषीधिका का स्थान वहां होना चाहिये जहां बहुत ज्यादा आसपास आबादी न हो उसे तो एकान्त स्थानमें होना चाहिये।

२ सालोका नामक लक्षणः— उस स्थानपर सूर्यका प्रकाश अच्छे रूपमें आना चाहिये अर्थात् वह आलोक सहित हो।

३ अनतिदूरा नामक लक्षण उसे गांवसे ज्यादा दूर नहीं होना चाहिये।

४ अनासन्ना नामक लक्षणः— न उसे गांवके अति

पास ही होना चाहिये

५ विस्तीर्णा नामक लक्षण- निषिधका (नसिया) अच्छी लम्बी चौड़ी क्षेत्र वाली होनी चाहिये

६ विध्वस्ता नामक लक्षण- उससे मोह पैदा न हो अतः सुन्दर भवन न होते हुए साधारण टूटे फूटे झोंपड़े या मकानों वाली उसे होना चाहिये। ऐसा होने पर उससे ध्येय की पूर्ति हो सकेगी।

७ दृढ़ा नामक लक्षण:- जमीन वहां की पुलखर (पोली) न होते हुए दृढ़ (मजबूत स्तर वाली) होना चाहिये।

८ पावना नामक लक्षण-स्थानको गन्दा न होते हुए सफाई युक्त होना चाहिये।

(९) अविलानामक लक्षण- उस भूमिमें कोई दोष या बधा नहीं होना चाहिये। आकुलताके रहते हुए निराकुलता की साधना कठिन है।

[१० अहरिता नामक लक्षण:- वह भूमि हरी घास आदिसे रहित होना चाहिये।

११ सोद्योता नामक लक्षण- उस स्थानको-उद्योत सहित होते हुए अच्छी आब हवा वाला होना चाहिये।

१२ अममा नामक लक्षण- भूमिको समान नहीं होना चाहिए।

१३ अग्निग्धा:—निषीधिका भूमि चिकनी नहीं होनी चाहिये।

१४ निर्जन्तुः– उसे जन्तु रहित भी होना चाहिये

१५ अरजाः– बालू आदि वहां ज्यादा नहीं होना चाहिये।

१६ अविचला:— जो चञ्चलता से रहित हो अर्थात् डगमगाती न हो ऐसी भूमि पाषाण सम्पन्न उस स्थान को होना चाहिये।

१७ निर्बाधा:– उस स्थानको आसपास की बाधाओंसे रहित होना चाहिये जिससे कि तत्रस्थ साधु शांति के साथ संयम पाल सके। बाधाएं, दुष्टमनुष्य जन्य, सिंहव्याघ्रादिविकरालहिंसकपशुजन्य या भूत प्रेतादि जन्य हो सकती है इनसे रहित इसे (स्थानको) होना चाहिये।

१८ गांवसे नैऋत्य, दक्षिण और पश्चिम इन तीन दिशाओंमे से किसी एक दिशामें उसे स्थित होना चाहिये।

सूत्रः— ब्राह्मीयवनानीदशोत्तरिकाखरोष्ट्रिकापुष्करसारिकापावर्तिकोत्तरकुरुकाक्षरपुस्तिकाभोगवतिकावैनयिकानिह्नवराङ्क गणितगंधर्वादर्शकमाहेश्वरद्राविडीबोलिदीत्राविडघो लिपयः॥ ३॥

लिपिसे प्रयोजन अक्षरोंकी बनावट या लिखावट से है। इससे मानव अपने मनमें निहित विचारों या भावोंको

अक्षरोंकी आकृति विशेषोंसे व्यक्त करता है। अपने विचारों को अक्षरोंमें ढाल कर वह उन्हें एक स्थायी टिका रहने वाला रूप प्रदान कर देता है। अक्षरन्यास, वर्णविन्यास आदि शब्द लिपिके ही पर्यायवाची हैं।

(१) ब्राह्मी नामक लिपि (२)यवनानी (३)दशोत्तरिका (४) खरोष्ट्रिका (५)पुष्करसारिका (६) पार्वतिका (७) उत्तरकुरुका (८)अक्षरपुस्तिका(६)भौमवाहिका(१०)विक्षेपका (१२)अङ्क(१३)गणित (१४गन्धर्व (१५)आदर्शक (१६)माहेश्वर १७ बोलिदी १८ द्राविडी।

इन लिपियोंका वर्णन या उल्लेख समवाय सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र नामक जैन ग्रंथोंमें पाया जाता है। इन ग्रंथोंका रचना काल सन् ४०० के लगभग है।

सूत्र—हंसभूत यक्षराक्षसोड्डीयावनीतुरुष्कीकीरीद्रविडासैंधवीमालवी नडीनागरीपारसीलाट्यनिमित्तचाणक्यीमौलदेव्यो वा ॥१४॥

अर्थ– लिपियोंके अठारह नाम नंदिसूत्र नामके ग्रंथमें इस प्रकार से भी मिलते हैं लिपियोंके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं–

१ हंस नामक लिपि, २ भूत लिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षस लिपि, ५ उड्डी, ६ यावनी, ७ तुरुष्की, ८ कीरी, ६ द्राविड़ी, १० सैन्धवी, ११ मालवी, १२ नड़ी, १३ नागरी, १४ पारशी, १५ लाटी, १६ अनिमित्त, १७चाण-

दर्थी १८ मोलवी।

सूत्र-लाटी चौडी डाहली काणडी गुजरीमोरठीमरहटी कोङ्कणीडखुरासा-
नीमागधीसैंहलीहाडीकीरी हम्मीरी परतीरी मसीमालवीमहा-
योध्यश्च ।१५।

अर्थ– नंदिसूत्र नामक जैनग्रंथमें जो कि ईसवी ५ वीं सदी का ग्रंथ है, लिपियोंके अठारह नाम इस प्रकारसे भी लिखे गये हैं:–

१ लाटी नामक लिपि, २ चौडी, ३ डाहली, ४ काणडी, ५गुजरी, ६ मोरटी, ७ मरहठी, ८ कोङ्कणी,६ खुरमानी, १०मागधी, ११ सैंहली,१२हाडी,१३ कीरी, १४हम्मीरी,१५ परतीरी, १६ मस्ती, १७ मालवी, १८ महायोधी।

सूत्र— स्वरोष्ट्रजागवयमहिषवाहनदक्षिणगमनरासडकरमुण्डवसोगदा-
कूपपतनाग्निदिपत्तिलोहतैलपाकतिलभोजनांवकुष्टदीपशमन
मदिरापानानि अपशकुनानि॥१६॥

अर्थः— सोते समय व्यक्तियोंको स्वप्न दिखलाई देते हैं। इसी तरह चलते उठते समय कुछ घटनायें होती हैं उन्हें देख व उनके आधार पर अच्छे बुरे फल की प्राप्ति का अनुमान लगाया जाता है। जिनसे अच्छे फल प्राप्ति की आशा हो उसे शुभ शगुन या शकुन कहते हैं और जिनसे बुरे फल प्राप्त होनेकी आशंका हो उसे अपशकुन या अशकुन कहते थे इन बातोंको जो आगे लिखी जा रही हैं

अपशकुनको व्यक्त करनेवाला शास्त्रोंमें कहा गया है-

१खरवाहन, २ उष्ट्र वाहन, ३ अजावाहन, ४ गवय वाहन, ५महिष वाहन,६ दक्षिणगमन, ७ रुण्ड,८ करमुण्ड, ९ वक्षोगदा१०, कूपपतन,११ अग्निदिपत्ति, १२ लोहपाक,१३ तैलपाक, १४ तिल भोजन,१५अन्धापन, १६कुष्ट (कोड), १७ दीपशमन,१८ मदिरा पान ।

१ खरवाहन नामक अपशकुनः-- सोते हुए अपने आपको स्वप्नमें गधेपर बैठे हुए देखना अपशकुन है ।

२ उष्ट्रवाहनः- स्वप्नमें अपने आपको ऊंट पर बैठे हुए देखना

३ अजा वाहनः-बकरेपर सवारी करते हुए अपने आपको देखना

४ गवयवाहनः-- गाय के समान गवय रोझ नामक पशुपर बैठे हुए स्वप्नमें देखना अच्छे फल को बतलाने वाला नहीं होता ।

५ महिष वाहनः-: भैंसकी सवारी देखना । उपरिलिखित पशुओंकी सवारी अशुभ परिणाम का द्योतन करती है ।

६ दक्षिण गमनः- दक्षिणकी ओर गमन करते हुए देखना ।

७ रुण्ड-- विना शिरके अवशिष्ट शरीरको देखना

८ करमुण्ड-- हाथमें मात्र शिरोभाग को पकड़े देखना ।

वक्षोगदा-- छाती पर चढ़ गदासे आक्रमण करते हुए देखना ।

१० कूपपतन-- कुएमें गिरते हुए स्वप्नमें देखना

११ अग्निविपत्तिः--अपनेको भयंकर अग्निमें घिरा हुआ देखना ।

१२ लौहपाक-- लौह की भट्टीमें अपनेको संतप्त देखना ।

१३ तैलपाक-- उबलते हुए तैलमें जलते हुए देखना

१४ तिलभोजन - स्वप्नमें तिली खाते हुए देखना ।

१५ अन्ध--अपने आपको अन्धे रूप में देखना

१६ कुष्ट-- कोढ़ रोग से आक्रान्त दुःखी देखना ।

दीपशमन-- जलते हुए दीप को धीरे धीरे बुझते हुए देखना जीवन समाप्तिके फलका संकेत करता है ।

मदिरापानः-- शराब पीनेके रूपमें देखना ।

सूत्रः-- ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा इति व्याधि शत्रुभयनिवारणश्रीप्राप्तिनिमित्ताष्टादशाक्षरमन्त्रः॥६७॥

अर्थ-- अठारह अक्षर वाले मंत्रका उल्लेख इस सूत्र में किया गया है । यह मंत्र ऋद्धि मंत्र है, इसके निमित्त से व्याधि का भय दूर हो जाता है, शत्रु संकट टल जाता

है और श्री (रुपये पैसे रूप लक्ष्मी) की प्राप्तिमें भी सहायक होता। इसके अठारह अक्षर अलग अलग इस प्रकार से हैं।

"ॐ न मो भ ग व ती गु ण व ती म हा मा न सी स्वा हा" ।

सूत्र— साध्यसाधनोभयधर्मविकलसंदिग्धसाध्यसाधनोभयधर्मोऽननन्वयाप्रदर्शितान्वयविपरीतान्वयासिद्ध साध्यसाधनोभयव्यतिरेकसंदिग्धसाध्यसाधनोभयव्यतिरेकाव्यतिरेकाप्रदर्शितव्यतिरेकविपरीतव्यतिरेका दृष्टान्ताभासाः॥१८॥

अर्थ-जैन दार्शनिकोंसे भिन्न अन्य दार्शनिकोंने अनुमान ज्ञानकी उत्पत्तिमें दृष्टान्तको अंग माना है। यद्यपि तीक्ष्ण बुद्धि और विज्ञ व्यक्तियोंके जहां तक वार्तालापका प्रश्न है, दृष्टान्त उदाहरण उपनय निगमनादि व्यर्थ है किन्तु मंद बुद्धियों के लिये इसका उपयोग लाभकारी के साथ ही साथ उपयोगी है।

दृष्टान्तसे प्रयोजन उस स्थानसे है जहां अन्वय व्याप्ति (साधन के सद्भावमें साध्य का सद्भाव दिखाना) और व्यतिरेक व्याप्ति दिखलाई जाय। जहां ऐसा न होते हुए बाह्य रूपसे जो दृष्टान्त जैसा जंचता हो उसे दृष्टान्ताभास कहते हैं। इसके अठारह भेद होते हैं। भेदोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैः—

[१] साध्यधर्मविकल नामक दृष्टान्ताभास [२]साधन धर्म विकल [पहिले के समान इसके तथा अन्य नामों के साथ "नामक दृष्टान्ताभास" पद जोड लेना चाहिये] ३ उभय साध्य साधनधर्म विकल [४]संदिग्ध साध्य धर्म [५] सदिग्धसाधन धर्म [६] संदिग्धउभयधर्म [७] अनन्वय ८ अप्रदर्शित - अन्वय [९] विपरीत- अन्वय [१०] असिद्ध साध्य व्यतिरेक [११] असिद्ध साधनव्यतिरेक [१२] असिद्ध उदय व्यतिरेक [१३] संदिग्ध साध्य व्यतिरेक [१४] संदिग्ध साधनव्यतिरेक [१५]संदिग्ध उभय व्यतिरेक [१६] अव्यतिरेक [१७]अप्रदर्शितव्यतिरेक [१८]विपरीत व्यतिरेक

१ साध्यधर्मविकल्पदृष्टान्ताभास–अन्वय व्याप्ति पूर्वक कहा गया दृष्टान्त यदि साध्य विकल हो वह उससे रहित हो तो उसे साध्यधर्मविकल दृष्टान्ता भास कहते हैं।

२ साधनधर्मविकल दृष्टान्ताभास – ऐसा दृष्टान्त जो साधनसे रहित हो वह इस कोटिमें आता।

३ उभय धर्म विकल दृष्टान्तभासः– ऐसा दृष्टान्त जिसमें न साध्य हो और न साध। हो उसे अभय धर्म विकल दृष्टान्ताभास कहते हैं

संदिग्धसाध्यधर्म दृष्टान्तभासः–जिसमें साध्यके पाये जानेका ... हो ऐसे दृष्टान्तको संदिग्ध...

दृष्टान्ताभास कहते हैं ।

५ संदिग्धसाधनः धर्म दृष्टान्ताभास— साधनके पाये जानेका जहाँ संदेह हो ऐसे दृष्टान्तको संदिग्धसाधन धर्म दृष्टान्ताभास कहते हैं ।

६ संदिग्धोभयधर्मदृष्टान्ताभासः— ऐसे दृष्टान्त जिनमें साध्य और साधनके पाये जानेका संदेह हो वे इसके अंतर्गत आते हैं ।

८ अप्रदर्शितान्वयदृष्टान्ताभासः— जिनसे अन्वय व्याप्ति न दिखलाई गई हो ऐसे दृष्टान्त इस कोटिमें आते हैं ।

९ विपरीतान्वयदृष्टान्ताभासः— ऐसे दृष्टान्त जिसमें अन्वय व्याप्ति उलटेरूपसे अर्थात् साधनके सद्भावमें साध्यका सद्भाव न बतलाते हुए साध्यके सद्भाव में साधनका सद्भाव दिखलाने रूपसे दिखलाई जाय ऐसे दृष्टान्तोंको विपरीतान्वय कहते हैं ये नौ भेद अन्वय व्याप्तिसंबंधी दृष्टान्ताभासोंके हैं ।

१० असिद्धसाध्यव्यतिरेक दृष्टान्ताभास ऐसे -दृष्टान्त जिनमें साध्यका अभाव असिद्ध हो, उन्हें असिद्ध साध्यव्य-[illegible] दृष्टान्ताभास कहते हैं ।

? असिद्ध साध्यव्यतिरेक दृष्टान्ताभास-जिनमें अभाव असिद्ध हो ऐसे दृष्टान्तोंको असिद्धसा- दृष्टान्ताभास कहते हैं ।

(१२) असिद्ध उभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभासः- जिस में साध्याभाव और साधनाभाव दोनों ही असिद्ध हों ऐसे दृष्टान्तों को असिद्धोभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहते हैं।

(१३) संदिग्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभासः-जिस में साध्याभाव की सिद्धि में संदेह हो ऐसे दृष्टान्तों को संदिग्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभासों की कोटि में रक्खा जा सकता है।

(१४) संदिग्ध साधन व्यतिरेक दृष्टान्ताभासः-जिन में साधनाभाव की सिद्धि में संदेह हो ऐसे दृष्टान्त इस कोटि में गर्भित होते हैं।

(१५) संदिग्धोभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभासः- ऐसे दृष्टान्त जिन में साध्याभाव के सद्भाव और साधनाभाव के सद्भाव में संदेह हो उन्हें संदिग्धोभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहते हैं।

[१६] अव्यतिरेक दृष्टान्ताभासः- ऐसे दृष्टान्त जिन में व्यतिरेक व्याप्ति का सर्वथा अभाव रहता है उसका उपपत्ति नहीं बैठती वे इस नाम से पुकारे जाते हैं।

[१७] अप्रदर्शित व्यतिरेक दृष्टान्ताभासः- ऐसे दृष्टान्त जिनमें व्यतिरेक व्याप्ति नहीं दिखलाई जा सकती है उनको अप्रदर्शित व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहते हैं। जिन

[१८] विपरीत व्यतिरेक दृष्टान्ताभासः-

दृष्टान्तों में व्यतिरेक व्याप्ति उल्टे रूप से अर्थात साध्य के अभाव में साधन का अभाव न बतलाते हुए साधन के अभाव में साध्य का अभाव बतलाने के रूप दिखलाई जाई, उसे विपरीत व्यतिरेक दृष्टान्ताभास कहते हैं।

ये नौ दृष्टान्ताभास व्यतिरेक व्याप्ति संबंधी हैं। इस प्रकार दोनों अन्वय और व्यतिरेक व्याप्तियों के कारण अठारह दृष्टान्ताभास बन जाते हैं।

[अपूर्ण]

सूत्रः—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजो वायुनित्येतरनिगोदाः सप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकौ द्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रिया जीव समासाः ॥१

अर्थ—जीव समास के द्वारा उन धर्म विशेषों का ग्रहण होता है जिन के द्वारा अनेक जीव अथवा जीव की अनेक जातियों का संग्रह होता है। इस सूत्र में ऐसे उन्नीस जीव समास गिनाये गये हैं। नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं:— (१) बादर पृथ्वी (२) सूक्ष्म पृथ्वी (३) बादर अप् (४) सूक्ष्म अप् (५) बादर तेज (६) सूक्ष्म तेज (७) बादर वायु (८) सूक्ष्म वायु (९) बादर नित्य निगोद [१०] सूक्ष्म नित्य निगोद [११] बादर नित्य निगोद [१२] सूक्ष्म इतर निगोद [१३] सप्रतिष्ठित प्रत्येक [१४] अप्रतिष्ठित प्रत्येक [१५] द्वीन्द्रिय [१६] त्रिन्द्रिय [१७] चतुरिन्द्रिय [१८] संज्ञी पंचेन्द्रिय [१९] असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय।

सूत्रः—दर्शनप्रदोपनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता नयनोत्पाटनदी
र्घस्वापितादिवाशयनदृष्टि गौरवालस्यनास्तिक्यवासना परमार्थनाद
रदर्शनपरेष्टवियोग सम्यग्दृष्टिसंदूषणकुतीर्थप्रशंसाप्राणव्यपरोप
तपस्विजुगुप्सेन्द्रियप्रत्यनीकत्वानि दर्शनावरणाश्रवहेतवः ॥८॥

अर्थ—दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारणों को इस सूत्र में गिनाया गया है, अर्थात् इस सूत्र में उनबातों का उल्लेख किया गया है जिनसे दर्शनावरणी कर्मोंका आश्रव होता है। ऐसी बातें उन्नीस होती हैं, नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं:—

[१] दर्शनप्रदोष नामक दर्शनावरणाश्रवहेतु (इसी प्रकार आगे के नामों में भी "नामक दर्शनावरणाश्रवहेतु' पद जोड़ लेना चाहिये) [२] दर्शन निह्नव [३] दर्शन मात्सर्य [४] दर्शनांतराय (५) दर्शनासादन ६- दर्शनोपघात ७- नयनोत्पादन ८- दीर्घस्वापिता ९- दिवाशयन १०- दृष्टि गौरव ११- आलस्य १२- नास्तिक्य वासना १३-परमा र्थानादरदर्शन १४- परेष्टवियोग १५- सम्यग्दृष्टिसंदूषण १६- कुतीर्थप्रशंसा १७- प्राण व्यपरोपण १८- तपस्वि जुगुप्सा १९- इन्द्रियप्रत्यनीकत्व।

१- दर्शनप्रदोप नामक आश्रवहेतुः—मोक्षमार्ग के साधनभूततत्वार्थ, श्रद्धान की बहुत ही प्रभावक, सुन्दर एवं मनोहारि विवेचना की गई कि विवेचन को सुन उसकी

प्रशंसासूचक कुछ भी चर्चा न करते हुए गुम सुम सोंठ से बने बैठे रहना और भीतर ही भीतर मन में पिशुनता (दुष्टता) के परिणाम करना दर्शन प्रदोष कहलाता है। इससे दर्शन गुणकी अभिव्यक्ति में बाधा आती है, उसके आवरण करने वाले कर्मपरमाणु आत्मासे संबंध को प्राप्त करते हैं।

२-दर्शन निह्नव नामक आश्रव हेतुः– किसी ने दर्शन विषयक कोई, जिज्ञासा की दृष्टि से प्रश्न किया, उसका उत्तर जानते हुए भी, ऐसा ख्याल कर कि यदि मैं बतला दूंगा तो इसकी तत्व विषयक रुचि -श्रद्धा- निर्मल हो जायगी, यह बढ़ जायगा, उत्तर न देना दर्शन निह्नव कहलाता है। इससे भी स्वयं के दर्शनगुण में व्याघात पहुँचता है। दर्शननिन्हव से स्वयं का दर्शनगुण निन्हवित हो जाता है।

३-दर्शनमात्सर्य नामक आश्रव हेतुः–तत्व विषयक श्रद्धा के साधनों की जानकारी रखते हुए मनमें छल कपट की भावना के कारण उनका योग्य पात्रोंको ज्ञान न कराना पूछने पर, अपने आपको व्यर्थ के कार्याभासों में फंसा हुआ बताकर टाल देना और इस प्रकार मोक्षमार्ग के पथ में बाधोत्पादक बनना दर्शन मात्सर्य नामक हेतु ।। है। इससे भी दर्शन गुण आवृत होता है।

४-दर्शन, अंतराय नामक आश्रव हेतुः- ऐसे कोई साधन जिनसे दर्शन गुण की वृद्धि हो सकती है, जैसे जिनदेवदर्शन, तीर्थयात्रादि उसमें व्यवधान पैदा करना, उनके प्रति अश्रद्धा भाव पैदा करना, यदि कोई जा रहा हो यात्रादि करते तो उसमें अड़ंगे लगाना जिससे तत्वश्रद्धान में दृढ़ता आती है ऐसी बातों के पास भी न फटकने देना आदि ऐसी बातें हैं जो दर्शन अंतराय के अंतर्गत रखी जा सकती हैं।

५- दर्शन आसादन नामक आश्रव हेतुः- कोई व्यक्ति प्रशम, संवेग अनुकम्पा, आस्तिक्यादि गुणों से युक्त होता हुआ समीचीन प्रवृत्ति करता है। दर्शन गुण सम्पन्नता का उसमें सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है फिर भी इसकी प्रतिष्ठादि न बढ़ जाय इस लिहाज से अपने वचनों द्वारा काय की चेष्टाओं से उसकी बुराई करना उस के प्रति उचित विनयादि प्रदर्शित न करना यदि कहीं उस की प्रशंसा करने का अवसर आये तब उचित होते हुए भी प्रशंसा न करना प्रत्युत जहां तक हो सके उसकी कीर्ति प्रसार में बाधा पहुंचाना आदि बातें दर्शन आसादना के अंतर्गत आती है।

६- दर्शन उपघात नामक आसादना आश्रव हेतु: बुद्धि एवं ... के कारण दूसरे की निर्मल ... वृत्ति में दोष ...

विधि महित शास्त्रोक्त प्रवृत्ति एवं को झूठा, ढोंग और पाखण्ड पूर्ण बतलाना, तथा मनमाने ढंग से वस्तु स्वरूप का विवेचन कर उस व्यक्ति के दुर्भावनादि पैदा करना इत्यादि ऐसी बाते हैं जो सहज में ही दर्शन उपघात की कोटि में शामिल की जा सकती हैं। ये क्रियाएं आत्मा के दर्शन गुण को ढंकने में या मलिन बनाने में कारण होती हैं।

७- नयनोत्पाटन नामक आश्रव हेतुः- जिससे चित्र विचित्र दृश्यावलियों वस्तुओं आदि के रूप [रङ्ग) की अभिव्यक्ति या ज्ञान होता है उस इन्द्रिय को नयन नाम से पुकारते हैं। किसी दूसरे प्राणी के नेत्रों को नोंच के खींच लेना, आंखे निकाल लेना आदि क्रियाएं नयनोत्पाटन में शामिल हैं। इससे दूसरे की दर्शन शक्ति -देखने की ताकत- को हानि पहुँचाई जाती है अतः ऐसे कर्म परमाणुओं का आश्रव होता है जिससे स्वयं के दर्शन गुण में ठेस पहुंचती है।

८- दीर्घस्वापिता नामक आश्रव हेतु - बहुत लंम्बे समय तक सोते रहना यह भी दर्शनावरण के आश्रव का कारण है।

९- दिवाशयन नामक आश्रव हेतु- जो समय कर्तव्य

कर्मों के करने के लिये निर्धारित हैं ऐसे दिन के समय में सोना दर्शनावरणी का कारण बन जाता है।

१०- दृष्टि गौरव नामक आश्रव हेतु- जरूरत से ज्यादा या साधारण रूप से जितनी आंखें खुलती हैं उससे अधिक आंख फैलाकर बड़ी बनाना भी दर्शनावरणी कर्म के आश्रव का कारण होती है

११- आलस्य नामक आश्रवहेतू- निरुद्यमी एवं अकर्मण्य हो निठल्ले रहना'आलस में फंसे रहकर कुछ न करने से भी दर्शन गुण में मलिनता आती है

१२- नास्तिक्य वासना नामक आश्रव हेतुः-अपने हृदय में जो धार्मिक भावनाएं पाई जाती हैं पुण्य संचय के प्रति उत्कण्ठा, पाप से भीरुता, साधारण लोक व्यवहार में नीति प्रियताआदी सद्विचार पाये जाते हैं, उन सब को व्यर्थ समझते हुए उनसे उदासीन होना, परलोक, स्वर्ग नरक कुछ नहीं है ये तो पुराणों के ढकोसले हैं आत्मा वात्मा व्यर्थ की कल्पना है ऐसे उखड़े हुए विचारों का होना आदि बातें नास्तिकता के अंतर्गत आती है।

इस विचार वाला व्यक्ती वर्तमान पर्याय को ही सब कुछ मान मनमें ठानता है कि चार दिन की जिन्दगी है, खा लो पी लो और मोज उड़ा लो (Eat drink and be marry) यदि पास में पैसा नहिं है तो कर्जा करो, अन्य

कोई उपाय करे और आनन्द से कोमलाङ्गी कामनियों के काले कजरारे नयनों की तिरछी निगाहों का अपने आप को निशाना बनाते हुए अलमस्त रहो। क्या मालूम इस शरीर के जलकर खाक हो जाने के बाद कभी मनुष्य बन पाये। इस सबकी तहमें भौतिकता के प्रति आकर्षण की भावना निहित रहती है। परिणाम यह होता है कि वह इस -नास्तिकता- प्रवाह में वह जाता है और अपने दर्शन गुण को ढंकने वाली सामग्री को जुटा लेता है।

१३- परमार्थानादर दर्शन नामक आश्रव हेतु–जिस से आत्मा के विकास का मार्ग दर्शन प्राप्त होता है ऐसे परमार्थ के प्रति घृणा, उपेक्षा या अनादर के भाव दिख-लाने से उसकी खिल्ली या मखौल उड़ाने से दर्शन गुण के विकास में बाधा पहुंचती है।

१४- परेष्टवियोग नामक आश्रव हेतु-- स्वयं के अतिरिक्त जितने प्राणी हैं। उन पर प्राणियों के प्यारे बान्धव जनों, वस्तुओं आदि से संबंध विच्छेद करा देना नष्ट कर देना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे दर्शन गुण ढंक जाता है।

१५- सम्यग्दृष्टि संदूषन नामक आश्रव हेतुः– ऐसे व्यक्ति जो समीचीन दृष्टि वाले हैं। जिनके मन मन्दिर में प्रशम संसार भीरुता सर्व सत्व के हित की भावना आदि

मद्धा बनाये सनत बनी रहती है उन पर भी झूठे दोषों को लगाना उनको बदनामी करना उनके प्रति ढोंगी पाखंडी आदि जैसे अपशब्दों का प्रयोग करना आदि बातों से ऐसे कर्म का आश्रव होता है जिससे दर्शन गुण मलिन हो जाता है।

(१६) कुतीर्थ प्रशंसा नामक आश्रव हेतुः- जो सच्चे अर्थों में वीतरागी, हितोपदेशी, विषयवासना से रहित, प्राणि उपकारक संदेशमहित देव, शास्त्र, गुरु नहीं हैं, उनकी उपासना करना, उनके अगुणों को गुणरूप में बखान करना आदि बातें हृदयस्थित श्रद्धा गुण में व्याघात पैदाकरती हैं, तात्पर्य यह है कि दर्शनगुण इससे ढक या मलिन हो जाता है।

(१७) प्राणव्यपरोपण नामक आश्रव हेतुः-प्राण वे हैं जिनके संयोग होने पर जीव जीवित और जिनके वियोग होने पर मरा हुआ समझा जाता है। प्राणियों के ऐसे प्राणों को आघात पहुंचाने से, उनका, सम्बन्धविच्छेद करने से, उन्हें संक्लेशित एवं दुःखित करने से दर्शनावरणी कर्म का आश्रव होता है।

(१८) तपस्वीजुगुप्सा नामक आश्रव हेतुः- तपस्वी शब्द के द्वारा उन मानव मुकुटमणियों का बोध होता है जो संसार को क्षणिक और विनाशीक मान उससे उदासीन

होते हैं, इन्द्रिय विषय वासनाओं से ममत्व घटा उनका त्याग करते हैं और वीतराग, निर्ग्रन्थ दिगम्बर भेष को धारण कर आत्म साधना के मार्ग पर सावधानी के साथ आगे बढ़ते रहते हैं।

वे दिगम्बर साधु शरीर से ममत्व त्याग अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। दन्त धावन, स्नान, केश–कर्तनादि शरीर को सुन्दर बनाने वाली क्रियाओं कासर्वथा त्याग कर देते हैं। बाह्य तपों को तपते हैं, गर्मी में पसीना आता ,धूल जम जाती है शरीर पर मल इकट्ठा हो जाता है परन्तु वे तो बाह्य मल की उपेक्षा कर अंरंग मल को गलाने में ही लगे रहते हैं।

ऐसे उच्च चारित्र, त्याग एवं तप से समन्वित तपस्वियों के प्रति घृणा, तिरस्कारादि के भाव व्यक्त करना आदि बातें उनको हानि पहुंचाने वाली न होती हुई स्वंय के गुणों का घात करने वाली होती हैं। इससे निर्मल रूचि रूप दर्शनगुणमें बाधा आती है।

(१६) इन्द्रिय प्रत्यनीकत्व नामक आश्रव हेतुः– इन्द्रियों का जो काम नहीं है, उनसे वह काम लेना, उन को उलट देना आदि ऐसी क्रियाएं हैं जिनसे यह प्राणी दूसरे को दुःखी तो बनाता ही है किन्तु साथ में भी अपना भी अहित कर बैठता है। इनसे प्राणी के तत्व

स्वरूप समझने एवं श्रद्धान करने वाली शक्ति (दर्शन) में विकार पैदा होता है ऐसे कर्म परमाणुओं का आश्रव होता है जिनसे दर्शन गुण ढक जाता है।

सूत्रः— ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणु सारीणं इतमेकोन विंशत्यक्षरर्द्धिमं त्रसर्वारिष्टाङ्गपीड़ावारणनिमित्तः ॥३॥

अर्थः-मंत्रोंका वर्णन करते हुए इस सूत्रमें *उन्नीस अक्षर वाला मंत्र दिखाया गया है। यह सम्पूर्ण* अरिष्टोंको हटानेमें, सब अंगोंकी पीड़ा दूर करने में निमित्तभूत होता है। इसके अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:-

ॐ ह्रीं अ र्हं ण मो अ रि हं ता णं ण मो पा दा णु सा री णं।

सूत्रः— ॐ नमो ह्रां श्रीं ऐं ह्रौं पद्मावत्यै देव्यै नमो नमः स्वाहा इति गर्भस्तम्भपतननिमित्त एकोन विंशत्यक्षरमंत्रः—(४)

अर्थः-ऊपर लिखे हुए ऋद्धिमंत्र के समान यह भी उन्नीस अक्षर वाला एक ऋद्धिमंत्र है। यह गर्भ के स्तम्भन (रोकने) में तथा रुके हुए गर्भ के अपतन में निमित्त (सहायक) होता है। इसके अलग अलग अक्षर इस प्रकार हैं:-

ॐ न मो ह्रां श्रीं ऐं ह्रौं प द्मा व त्यै दे व्यै न मो न म स्वा हा।

सूत्रः- जीवकर्तृ वक्तृ प्राणिभोक्तृपुद्गलवेदविष्णुस्वयंभू शरीरिमानव सक्तृ जन्तु मायाविमानियोगिसंकटासंकटक्षेत्रज्ञान्तरात्मन जीव ज्ञापकाः-(५)

अर्थः- जीव के स्वरूप को बतलाने वाली उन्नीस बातें होती हैं। इनकी सहायता से जीव की समस्त खूबियाँ या विशेषताएं बड़ी सुगमता से जानी जा सकती हैं। उन्नीस बातों के नाम इस प्रकार हैं:-

१- जीव कर्ता २- वक्ता ३- प्राणी ४- भोक्ता ५- पुद्गल ६- वेद (वेदी) ७- विष्णु ८-स्वयंभू ९-शरीरी १०- मानव ११- सक्ता १२- जन्तु १३-मायावी १४ मानी १५-योगी १६- संकट (संकुट) १७- असंकट (असंकुटी १८- क्षेत्रज्ञ १९- अंतरात्मा।

इन बातों का विवेचन करने के पूर्व अच्छा हो कि जीव इस शब्द का अर्थ मालूम करले। छः द्रव्यों में से यह एक द्रव्य है। इसका और आगे लिखे जाने वाले जीव ज्ञापक भावों का वर्णनसंक्षेप में दोनयों [व्यवहार नय और निश्चयनय] का आश्रय ले किया जायगा, इसके बिना जो भी वर्णन होगा वह एकांगी होगा, वस्तु स्वरूप का ठीक २ बोध कराने वाला नहीं कहला सकता।

व्यवहार नय से पांच इन्द्रिय, तीन बल; आयु और श्वासोच्छ्वास रूप दश प्राणों को कर्म के अनुसार धारणकर

जीता है। जीवित रहेगा और पहिले जीवित था इसलिये जीव है। निश्चयनय से केवलज्ञान दर्शन, सम्यक्त्वादि रूप चैतन्य प्राणों को धारण कर जीता है जीवित रहेगा और पहिले भी जीवित था इस लिये जीव है। ऐसे जीव के स्वरूप को बतलाने वाले ज्ञापक भाव अब लिखे जाते हैं

१- कर्ता नामक जीव ज्ञापक भावः- व्यवहार नय की दृष्टि से अपने अच्छे बुरे कर्मों का तथा निश्चय नय के लिहाज से चैतन्य पर्यायों का कर्ता जो हो सो जीव है।

२- वक्ता नामक जीव ज्ञापक भावः- व्यवहार नय सत्य असत्य रूप वचनों को बोलने वाला यह वक्ता है। निश्चय नय के लिहाज से अवक्ता है।

३- प्राणी नामक ज्ञापकभावः- व्यवहार नय से इन्द्रियादि दश प्राणों से यह युक्त है अतः प्राणी है। निश्चय नय से केवल ज्ञान दर्शनादि रूप चैतन्य प्राणों से युक्त है अतः प्राणी है।

४- भोक्ता नामक ज्ञापकभावः- व्यवहार नय से शुभ अशुभ कर्मों के फल को भोगने वाला है निश्चय नय से स्वरूप को भोगने वाला या अनुभवन करने वाला है।

५ पुद्गल नामक ज्ञापक भावः-- व्यवहार नय से कर्म नोकर्म रूप पुद्गल कर्म परमाणुओं से निर्मित शरीरों

(१५) योगी नामक ज्ञायापक भावः—व्यवहार नय से, मन वचन और काय जिसके पाये जाते हैं ऐसा यह जीव योगी है निश्चयनय से यह अयोगी है।

(१६) संकट (सकुट) नामक ज्ञापक भावः—

(१७) असंकुट ज्ञापक भाव व्यवहार नय से सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जघन्य शरीर प्रमाण वाला यह होता है अर्थात् अति संकुचित होता है अतः संकुट है समुद्घात अवस्था होने पर सारे लोकाकाश में फैल जाता है अतः असंकुट है। निश्चयनय से इस जीव के प्रदेशों का संहरण (संकोच) और विसर्पण [फैलाव] नहीं पाया जाता, यहतो कर्म के निमित्त से होता था इसलिये अंतिम भव से किंचित् ऊन अवगाहना वाला यह जीव होता है अतः संकुट असंकुट कुछ भी नहीं रहता।

१८- क्षेत्रज्ञ नामक ज्ञापक भावः— व्यवहार नय से सामर्थ्य के अनुसार लोक अलोक और स्व स्वरुप को जानता है निश्चय नय के लिहाज से विना किसी प्रतिबंध के समस्त लोकाकाश, अलोकाकाश और स्व स्वरूप को यह जीव जानता है अतः क्षेत्रज्ञ है।

१९:- अंतरात्मा नामक ज्ञापक भावः—व्यवहार नय से ज्ञानावर्ण दर्शनावरणादि रुप आठ कर्मों के अन्दर रहने का स्वभाव पाया जाता है अतः अंतरात्मा है।

निश्चयनयके लिहाजसे अंतरंगमें पाये जाने वाला जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव उसमें रहने का स्वभाव इस जीव के पाया जाता है इसलिये अंतरात्मा है। इसतरह व्यवहार और निश्चयनयकी दृष्टिसे जीवके ज्ञापक भावों का सतत चिन्तवन करना चाहिये।

–बीसवां अध्याय–

सूत्र– पर्यायपर्यायसमासाक्षराक्षरसमासपदपदसमाससंघातसंघातसमास प्रतिपत्तिप्रतिपत्तिसमासानुयोगानुयोगसमासप्राभृतप्राभृतप्राभृतसमासप्राभृतप्राभृतसमासवस्तुवस्तुसमासपूर्वपूर्वसमासाःश्रुतज्ञानानि ॥१॥

अर्थः– श्रुतज्ञानसे प्रयोजन उस ज्ञानसे है जो कि मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थसे भिन्न पदार्थ का ज्ञान होता है। यह ज्ञान नियम से मतिज्ञान पूर्वक होता है। इसके मुख्य दो भेद और अनेकों ही उपभेद होते हैं। इस सूत्र में श्रुतज्ञान के बीस भेद बताये गये हैं नाम उनके ये हैं :–

(१) पर्याय नामक श्रुतज्ञान(इसी तरह अन्य आगे लिखे जाने वाले नामोके साथ, नामक श्रुतज्ञान,पद जोड़ते चले जाना चाहिये (२)पर्यायसमास (३) अक्षर (४) अक्षरसमास (५) पद (६) पदसमास (७) संघात (८) संघातसमास (९) प्रतिपत्ति (१०) प्रतिपत्ति समास (११) अनुयोग (१२) अनुयोगसमास (१३) प्राभृ

(१४) प्राभृतप्राभ्रतसमास [१५] प्राभ्रत (१६) प्राभ्रत समास [१७] वस्तु [१८]वस्तु समास १९] पूर्व [२०] पूर्व समास।

१- पर्याय नामक श्रुतज्ञानः सूक्ष्म निगोदिया 'निगोद में पाया जाने वाला, लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जो सबसे जघन्य ज्ञान होता है उसे पर्याय ज्ञान कहते हैं। यह सबसे जघन्य ज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवके उत्पन्न होने के प्रथम समय में होता है। इतना ज्ञान तो प्रत्येक जीव के सर्वदा सतत निरावरण एवं प्रकाशमान रहता है।

२- पर्याय समास नामक श्रुतज्ञानः- अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात लोक प्रमाण षटस्थान हुआ करते हैं। वे सब पर्याय समास ज्ञान के ही भेद हैं।

३- अक्षर नामक श्रुतज्ञानः- उत्कृष्ट पर्याय समास से अनन्त गुण अक्षर ज्ञान होता है। इसमें एक कम एकट्ठी का भाग देने पर जो लब्ध आता है उतना, अर्थाक्षरज्ञानका प्रमाण समझ लेना चाहिये।

४- अक्षर समास नामक श्रुतज्ञानः- अक्षर ज्ञान के ऊपर तथा पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के विकल्प हैं उन सबको अक्षरसमास ज्ञान के भेद समझना चाहिये

५- पद नामक श्रुतज्ञानः- जो कुछ भी अक्षर ज्ञान

का प्रमाण बतलाया गया है उसमें एक एक अक्षर की वृद्धि की जाय। ऐसे एक एक की वृद्धि करते करते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि हो जाय तब पद नामक श्रुतज्ञान होता है। एक पदके अक्षरों का प्रमाण सोलह सौ चौंतीस करोड़ तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी '१६३४८३०७८८८, हैं।

६- पद समास नामक श्रुतज्ञानः- पदके आगे एक एक अक्षर की वृद्धि करते करते संघात ज्ञान की प्राप्ति के पूर्व जितने भी ज्ञान के भेद होते हैं, वे सब पद समास ज्ञान अंतर्गत हैं।

७- संघात नामक श्रुतज्ञानः- एक पदके आगे क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि होते होते संख्यात हजार पद की वृद्धि हो जाय उसको संघात नामक श्रुतज्ञान कहते हैं यह संघात नामक श्रुतज्ञान चार गति में से एक गति का स्वरुप बतलाने वाला अपुनरुक्त मध्यम पदों के समूह रूप होता है।

८- संघात समास नामक श्रुतज्ञानः- चारों गतियों में से एक गति के निरूपण करने वाले संघात श्रुतज्ञान के ऊपर क्रम से पहिले की तरह वृद्धि करते चले और प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान की प्राप्तिके पूर्व जितने भी विकल्प 'ज्ञान के, होते हैं वे सब सघात समास नामक श्रुतज्ञान के अंतर्गत हैं

९- प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान :- सघात श्रुतज्ञान के पदों के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि करते२ जब संख्यात हजार संघात की वृद्धि हो जाय तब एक प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान होता है।

१०- प्रतिपत्ति समास नामक श्रुतज्ञान :-चारों गतियों के स्वरुप को बतलाने वाले प्रतिपत्ति ज्ञान के ऊपर क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि करते चले जाओ और जब तक अनुयोग ज्ञान की प्राप्ति न हो जाय तब तक यह क्रिया जारी रक्खो। तब अनुयोगज्ञानकी प्राप्तिके पूर्व उपांत्य तक जितने विकल्प होंगे वे सब प्रतिपत्ति समास नामक श्रुत ज्ञान के अंतर्गत होंगे।

११- अनुयोग नामक श्रुतज्ञानः- प्रतिपत्ति ज्ञान के ऊपर क्रमसे पहिले की तरह (संघात ज्ञान की तरह) एक एक अक्षर की वृद्धि की जाय और जब इस तरह संख्यात हजार प्रतिपत्ति की वृद्धि हो जाय तब एक अनुयोग श्रुत - ज्ञान होता है। इसके द्वारा चौदह मार्गणाओं का स्वरूप जाना जाता है।

१२- अनुयोग समास नामक श्रुतज्ञानः- अनुयोग ज्ञान के ऊपर और प्राभृत प्राभृत नामक श्रुतज्ञान की प्राप्ति के पूर्व जितने मध्य के विकल्प होते हैं वे सब इस ज्ञान के अंतर्गत आते हैं।

१३- प्राभृतप्राभृत नामक श्रुतज्ञानः- प्राभृत और अधिकार पर्यायवाची या एक ही अर्थ को बतलाने वाले शब्द हैं। अतः प्राभृत (वस्तु नामक श्रुतज्ञान के अधिकार का नाम प्राभृत है) के अधिकार को प्राभृत प्राभृत कहते हैं। चौदह मार्गणाओं के निरूपण करने वाले अनुयोग ज्ञान के ऊपर पहिले बतलाये गये क्रमके माफिक (अनुसार) एक एक अक्षर की वृद्धि करते हुए जब चतुर (चार) अनुयोगों की वृद्धि हो जाय तब प्राभृत प्राभ्रत श्रुतज्ञान वह कहलाता है।

१४ प्राभृतप्राभृतसमास नामक श्रुतज्ञानः- प्राभृत प्राभृत ज्ञान के ऊपर पहिले के समास क्रमशः एक एक अक्षर की वृद्धि करते करते चौबीस प्राभृत प्राभृत की वृद्धि तक पहुँचने के पूर्व जितने अंतविकल्प ज्ञान के होते हैं वे सब इस ज्ञान (प्राभृत प्राभृत समास) के अंतर्गत होते हैं।

(१५) प्राभृतक नामक श्रुतज्ञानः- जैसे कि पहिले एक एक अक्षर की वृद्धि की वैसी ही वृद्धि प्राभृत प्राभृ ज्ञान के ऊपर वृद्धि करते हुए चौबीस प्राभृत प्राभृत तक वृद्धि हो जाय तब एक प्राभृतक श्रुतज्ञान का प्रमाण आता या प्राप्त होता है।

१६ प्राभृत समास नामक श्रुतज्ञानः- प्राभृत ज्ञान

के ऊपर एक एक अक्षरकी वृद्धि करते हुए वस्तु अधिकार के पूर्व जितने अंतर्विकल्प होते हैं वे सब प्राभृत समास के अंतर्गत आते हैं।

(१७) वस्तु नामक श्रु तज्ञान-प्राभृत ज्ञानके आगे एक एक अक्षर की वृद्धि करते हुए बीस प्राभृत की जब वृद्धी हो जाय तब एक वस्तु अधिकार पूर्ण हो जाता है एक एक वस्तु अधिकार में बीस बीस प्राभृत होते हैं और एक प्राभृत में चोबीस चोबीस प्राभृत प्राभृत होते हैं।

(१८)वस्तु समास नामकश्रु तज्ञानः-वस्तु ज्ञानके ऊपर एक एक अक्षर की वृद्धी करते हुए क्रम से इस वस्तु की वृद्धी होने के पूर्व जितने अन्तर्विकल्प होते हैं वे सब वस्तु समास के अंतरगत होते हैं।

(१९) पूर्व नामक श्रु तज्ञानः- वस्तु ज्ञान के ऊपर एक एक अक्षर की वृद्धि पहिले कहे हुए क्रम के अनुसार करके जब क्रम से दश वस्तु कि वृद्धि हो जाय तब पूर्वो में से पहिला उत्पाद पूर्व होता है। इसी प्रकार क्रम से यह संघातादि की वृद्धि करते करते जब चौदह वस्तु की पूर्ती होजाय तब दूसरा आग्रायणी पूर्व होताहैइसी प्रकार अन्य और बारह पूर्वका प्रमाण समझ लेना चाहिये। इस तरह कुल चौदह-पूर्व का प्रमाण समझ लेना चाहिये।

(२०) पूर्व समास नामक श्रु तज्ञानः- पूर्व से आगे एक

एक अक्षर की वृद्धि के क्रम से बढते बढते पूर्ण श्रुतज्ञान की प्राप्ति के पूर्व जितने भी अन्तर्विकल्प होते हैं वे सब पूर्व समास के अंतर्गत आते हैं।

सूत्रः— लज्जादयाप्रसन्नताप्रतीतिपरदोषाच्छादनपरोपकार सौम्य दृष्टि गुणग्राहित्वमिष्टवादी दीर्घविचार दानशीलकृतज्ञतत्वज्ञ धर्मज्ञतामिथ्यात्वाभक्ष्य त्यागसंतोषस्याद्वाद भाषणषट्कर्म प्रवीणताः श्रावकस्योत्तरगुणा ॥-॥

अर्थः— श्रावक से प्रयोजन प्रायः उन गृहस्थों से रहता है या उनको ग्रहण किया जाता है जो घर में रहते हैं और कुटम्बीजनोंका परिपालन करते हैं इन श्रावकों के भी उत्तर गुण होते हैं। उत्तर गुणों के नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:-

१- लज्जा नामक उत्तर गुण (इसी तरह प्रत्येक नाम के आगे 'नामक श्रावक उत्तर गुण' पद जोड़ते रहना चाहिये। २- दया ३- प्रसन्नता ४- प्रतीति ५- परदोषाच्छादन ६- परोपकारी ७- सौम्य दृष्टि ८- गुण ग्राहित्व ९- मिष्टवादित्व १०- दीर्घविचारकत्व ११- दान १२- शील १३-कृतज्ञता १४- धर्मज्ञता १५- तत्वज्ञता १६- अमिथ्यात्व १७- अभक्ष्यत्याग १८- संतोष १९- स्याद्वाद भाषण २०- षट्कर्म प्रवीणता।

१- लज्जा नामक उत्तर गुण— न्याय और धर्म को आदर्श मान चलने वाले श्रावकउद्धत एवं उच्छृंखल प्रवृति

न करता हुआ बड़ेजनों के प्रति आदर भाव रखता उनकी देअदबी न करते हुए लज्जावन्त होता है। कुल परम्परा एवं प्रतिष्ठा के प्रति सचेत रहता है।

२- दया नामक उत्तर गुण:- श्रावक के लिये आवश्यक है कि वह जीवों के प्रति कठोरताके भावोंका परित्याग करते हुए उनके प्रति सहृदयता एवं स्नेह का व्यवहार करे दुष्टता को पास न भटकने देवे।

(३) प्रसन्नता नामक उत्तर गुण, श्रावक को चाहिये कि अपने हृदयमें रौद्र एवं आर्तपरिणामोंका परिपूर्णरूपसे परित्याग कर अपने परिणामोंमें निर्मलता बनाये रक्खे। खेद और शोक को एक तरफ कर प्रसन्नता को अपनावे, ग्रहण करे।

[४] प्रतिति नामक उत्तरगुण : श्रावक को अपने धर्म, देव, शास्त्र और गुरु में सच्ची श्रद्धा रखते हुए लोक व्यवहारमें परिस्थिति और समयको दृष्टिमें रखते हुए सज्जनोंके प्रति प्रतीतिभाव बनाये रखना चाहिये। लोक-व्यवहार में यह गुण उपयोगी हैं।

परदोषाच्छादन नामक उत्तरगुण :-अपने आपको प्रसन्न, निश्चिन्त एवं दया सम्पन्न बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि श्रावक दूसरे के अवगुणों की ओर दृष्टि न देवे और यदि धर्मात्मा बंधु की कमजोरी या दोष

मालूम भी पड़ जाय तो उसे चाहिये कि उस कमी या दोष को दूसरों पर प्रगट न करे उसको ढांक देवे।

६- परोपकार नामक उत्तर गुणः– श्रावक के कर्तव्यरूप गुणोंमें एक गुण यह भी है कि वह दूसरों की भलाई करने में अपने आपको लगाये।

(७) सौम्यदृष्टि नामक उत्तरगुण– श्रावक की मुखाकृति एवं उसके नेत्रोंकी आकृति विकराल, दांत पीसते हुए, आंख लाल लाल किये, भृकुटी चढ़ाये हुए नहीं रखना चासिये। उसकी चेहरे से शांति टपकती रहना चाहिये।

८- गुणग्राहित्व नामक उत्तरगुणः– श्रावक को अपने विकास के लिये जरूरी है कि वह दूसरों में पाये जाने वाले अच्छे अच्छे गुणों को अपने जीवन में उतारे। गुणग्राही व्यक्ति ही उन्नतिके पथ पर आगे कदम बढ़ानेमें समर्थ होता है।

९– मिष्टवाद नामक उत्तरगुणः– श्रावक के लिये जरुरी है कि वह अपने मिलने वाले व्यक्तियों से अप्रिय कटु एवं कठोर शब्दों का प्रयोग न करे। अपने मुँह से उसे सदैव मीठे शब्द निकालना चाहिये।

१०- दीर्घविचार नामक उत्तर गुणः- आदमी को सच्चे अर्थ में आदमी बनाये रखने के लिये आवश्यक है

कि वह उत्तेजना एवं काम का कच्चा न होवे। किसी बात या कार्य करनेके पूर्व उसका पूर्वापर परिणाम सोच लेना चाहिये उसे दीर्घ विचारी होना चाहिये।

११- दान नामक उत्तर गुण:- न्याय से अर्जित अपने द्रव्यको दूसरेके दुःख, दर्द या आवश्यकता की पूर्ति के लिये विना किसी प्रदर्शन या ख्याति की भावना के देना दान कहलाता है। श्रावक के लिये यह गुण परमा वश्यक है।

१२- शील नामक उत्तर गुण:- श्रावक के लिये आवश्यक यह भी है कि अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंसे माता वहिन और सुता जैसा वर्ताव करे। बड़ों के प्रति आदर भाव रक्खे। साथ ही सद्भावोंको अपने हृदय में स्थान देवे।

१३- कृतज्ञ नामक उत्तर गुण:- अपने प्रति किये गये एहसानों या उपकारों के प्रति श्रावक को चाहिये वह अपने उपकारक व्यक्ति के प्रति आदर भाव रक्खे, उसका आभारमाने।

१४- तत्वज्ञ नामक उत्तर गुण:- जीवादि सात तत्वों को जानने वाला भी श्रावक को होना चाहिये। यहां वहां उलझे रहने के वावजूद भी श्रावक को सार या तत्व भूत जो आत्मा है उसके स्वरूप परिज्ञान की ओर दृष्टि

देते रहना चाहिये।

१५- धर्मज्ञ नामक उत्तर गुणः- धर्म का मतलब उन क्रियाओं से है जो प्राणी को उत्तम सुख में पहुँचाता है ऐसे धर्म और तत्संबंधी क्रियाओं का परिज्ञाता श्रावक को होना चाहिये।

१६- अमिथ्यात्व नामक उत्तर गुणः- श्रावक को विवेक बुद्धि से काम लेते हुए यह जान लेना चाहिये कि पर पदार्थों में ममत्व रखने रूप परिणामों के कारण यह मानवात्मा जन्म मरण के चक्कर में फंसी रहती है। इस विपरीत बुद्धिका त्यागी भी उसे होना चाहिये। अगर इस ओर दृष्टि पात न किया और ममता मदसे मदोन्मत्त बना रहा तो सच्चे अर्थों में श्रावक पद की प्राप्ति नहीं होगी। अतः मिथ्यात्व त्यागी भी उसे होना चाहिये।

१७-अभक्ष्यत्याग नामक उत्तरगुणः- जो दयालु है, धर्मज्ञ है और है मिथ्यात्व त्यागी, उसके लिये आवश्यक है कि अपने आपको पद में स्थिर बनाये रखने के लिये बुद्धि बिगाड़ने वाले, स्वास्थ्य हानिकारक, बहुहिंसाकारक और कुलपरंपरा से नहीं खाने योग्य पदार्थों का सेवन न करे। वे पदार्थ उसके लिये अभक्ष्य है, खाने योग्य नहीं हैं वह उनका त्यागी होता है।

१८- संतोष नामक उत्तरगुणः- पाप भीरु श्रावकको

ध्यान रखना चाहिये कि पानी उतना ही आयगा जितना बड़ा बर्तन होगा। सुख साधन सामग्री उतनी ही प्राप्त होगी जितनी बड़ी पुण्य रूपी थाली होगी। पुण्य के अभाव में चाहे जितने पैर फट फटाये जाँय पाप के अति- रिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होगा ऐसा ख्याल कर श्रावक को चाहिये कि वह संतोष हार को अपने गले में डाल अपने सीने पर फैला लेवे।

१६-स्याद्वादभाषण नामक उत्तर गुणः—श्रावक को अपने वार्तालापमें स्याद्वादकी दृष्टि रख बातचीत करना चाहिये। ऐसा करने पर पारस्परिक द्वेष एवं कलह पैदा नहीं होगें। श्रावक के लिये यह गुण आवश्यक है। किसी एक पक्ष का आलम्बी न होता हुआ उसे विशाल, उदार एवं सजग दृष्टि वाला होना चाहिये।

२०- षट्कर्म प्रवीणता नामक उत्तर गुणः— देव की पूजा करना, मुनिआदि की उपासना करना' स्वाध्यायादि करना रूप छह आवश्यक कर्मों में दिल चस्पी या चातुर्य आदि रखना श्रावकके उत्तरगुणोंमें से एक है। ऐसी सतर्क प्रवृत्ति श्रावक के उत्तर गुणों की पालने में मदद देती है।

सूत्रः—चन्द्रप्रभसिद्धकनककनकप्रभरजतरजताभसिद्धसुप्रभमहा- प्रभाङ्काङ्कप्रभसिद्धमणिकूटमणिप्रभरुचकरुचकाभसिद्धहिमवन्म-

दिग कुण्डलगिरिकूटाः ।३।

अर्थ—कुंडलगिरि नामक पर्वत पर बीस कूट पाये जाते हैं। उन कूटों के नाम ये हैं :—

(१)वज्रनामककूट (२) वज्रप्रभ कूट (३) सिद्ध कूट (४) कनक कूट (५) कनकप्रभ (६) रजत (७) रजताभ (८) सिद्ध कूट (९) सुप्रभ कूट (१०) महाप्रभ (११) अंक कूट (१२) अंकप्रभ (१३) सिद्ध कूट (१४) मणिकूट (१५) मणिप्रभ (१६) रुचक (१७) रुचकाभ (१८) सिद्ध (१९) हिमवत्कूट (२०) मंदिर कूट।

सूत्रः—कोटप्रासादचैत्यभूमिवेदीखातिकाभूमिवेदीपुष्पवाटिकाभूमिकोटो पवनभूमिवेदीध्वजाभूमिकोटकल्पवृक्षभूमिवेदीभवनभूमिवत्रकोटसभा भूमिस्फटिकवेदीप्रथमद्वितीयतृतीयपीठिकाः समवशरणरचनावास्तवः।।४।

अर्थ-समवशरणसे प्रयोजन उस विसाल, अद्वितीय अनुपमेय, चित्र विचित्र वर्णों से खचित, विस्मयकारी, धर्म सभा मण्डप से है जो इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर द्वारा निर्मित होता है। साधन सामग्री से सम्पन्न सुरपति सेवक (कुबेर) शांति और साधना की साक्षात मूर्ति जिनेन्द्र देव के प्रति सन्मार्ग प्रदर्शन तथा आत्मदर्शन हेतु इस सभामण्डप की सर्जना करता है। सभी सांसारिकसत्व पारस्परिक कलहका परित्यागकर शांति, स्नेह रूप शीतल सुधारस में डुबकी लगाते हैं, संताप को हरते हैं और साथ

आत्म विकासके मार्गदर्शन को प्राप्त करते हैं। उस समव-शरण की रचना में बीस प्रकार की वस्तु कला संबंधी रचनाएं पाई जाती हैं। नाम उनके ये हैं:–

१- कोट नामक समवशरण रचना वस्तु (इसी तरह अवशिष्ट उनके आगे लिखे जाने वाले के साथ भी नामक समवशरण रचना वास्तु पद जोड़ते चले जाना चाहिये)।

२- प्रासाद चैत्यभूमि ३- वेदी ४- खाति का (खाई) भूमि ५- वेदी ६- पुष्पवाटिका भूमि ७- कोट ८- उपवन भूमि ९- वेदी १०- ध्वजा भूमि ११- कोट १२- कल्पवृक्ष भूमि १३- वेदी १४- भवन भूमि १५- वज्रकोट १६-सभा भूमि १७- स्फटिक वेदी १९- प्रथमपीठिका २०- द्वितीय पीठिका २०- तृतीय पीठिका।

सूत्र—द्विद्वाविंशतिद्विद्वाविंशतिचतुश्चतुरधिकचत्वारिंशच्चतुश्चतुरधिचत्वारिंशच्चतुश्चतुरधिकचत्वारिंशच्चतुश्चतुरधिकचत्वारिंशद्विविंशत्येकदशैकाः त्रिपीठिकानां चतुर्विंशतिर्भागास्तेषां रचनाभागा

अर्थः– समवशरणकी वस्तुका विवेचन एवं उनके नामों का उल्लेख पूर्व सूत्र में किया जा चुका है। इस सूत्रमें यह बतलाया जा रहा है कि उस रचना को तीन सौ भागों में विभक्त किया जाय तो क्रमशः उल्लिखित वस्तुओं की रचनाका भाग कितना होगा। रचना भाग भी

बीस भागों विभक्त होगा कारण कि वस्तुओं की संख्या बीस है।

प्रथम कोट नामक वास्तु रचना दो भागों में है। दूसरी प्रासाद चैत्य भूमि नामक वास्तु रचना बाईस(२२) भागों में है। तृतीय वेदी नामक वास्तु रचना दो भागों में है चतुर्थ खातिका भूमि नोमक वास्तु बाईस भागों में है। पंचम वेदी नामक वास्तु रचनाके चार भाग हैं। छठवीं पुष्पवाटिका भूमि की वास्तु रचना चवालीस भागों में है। सप्तवीं कोट नागक वास्तु रचना चार भागों में है। आठवीं उपवनभूमि नामक वास्तु रचना के चवालीस भाग हैं। नवमीं वेदी नामक वास्तु चार भागों में है। दशमी ध्वजा भूमि नामक वास्तु के चवालीस भाग हैं। ग्यारवीं कोट नामक रचना वास्तु चार भाग है। बारहवीं कल्पवृक्ष भूमि नामक वास्तु रचनाके चवालीस भाग है। तेरहवीं वेदी नामक वास्तु रचनाके दो भाग वे। चौदहवीं भवन भूमि नामक वास्तु रचनाके बाईस भाग है। पंद्रहवीं वज्रकोट नामक वास्तु रचनाका एक भाग है। सोलहवीं सभा भूमि नामक वास्तु रचनाके दश भाग हैं। सत्रहवी स्फटिक वेदी नामक वास्तु रचना का एक भाग तथा अंतिम तीन पीठिकाओं के चौबीस भाग हैं। इस प्रकार समवशरण के तीनसौ भाग बीस भागों में विभक्त है

संक्षेप पहिला दो का, दूसरा बाईस का, तीसरा दो का, चौथा बाईस का, पांचवा चार का छटवा चवालीस का, सातवां चार का आठवां चवालीस का नौवां चार का दशवां चवालीस का ग्यारहवां चार का, बारहवां चवालीस तेरहवां दो भागों का, चौदहवां बाईस भागों का, पंद्रहवां एक भाग का, सोलहवां दस भागों का, संत्रहवां एक भाग का और अठारहवां, उन्नीसवां बीसवां इन तीनों के मिला कर कुल चौबीस भाग हैं। ये समवशरण की वास्तुओं में रचना भागों बटवारा है।

सूत्रः-सीमन्धरयुगमन्धरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभर्षभाननानन्तवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननभद्रबाहुभुजंगमेश्वरनेनिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशोजितवीर्यां महावीरतीर्थोपदेशकालेविदेहेषुविद्यमानतीर्थंकराः॥६

अर्थ-वर्तमान पंचमकाल में, जोकि भरतक्षेत्र के अंतिम तीर्थंकर श्री १००८ भगवान महावीर का उपदेश काल कहलाता है, उसमें भी तीर्थंकरत्व की परिपाटी को बनाये रखने वाले, विदेहक्षेत्र संबंधी बीस तीर्थंकर अभी भी पाये जाते हैं। ये आत्मीक विकासकी चरम सीमाको प्राप्त करने में प्रयत्नशील होते हुए तत्स्थ क्षेत्रवासियों को कल्याणकारक मार्गका उपदेश देते रहते हैं। इन तीर्थंकरों की संख्या बीस है, विद्यमान विदेहस्थ तीर्थंकर कहलाते हैं और नाम अलग अलग इस प्रकार हैं-

(१) मीमन्धर स्वामी (२) युगमन्धर स्वामी (३) बाहुप्रभु (४) सुबाहुप्रभु (५) संजात स्वामी (६) स्वयंप्रभ प्रभु (७) भटऋषिमानन स्वामी (८) अनन्तवीर्य (९) सूरप्रभु प्रभु (१०) विशालकीर्ति (११) वज्रधर स्वामी (१२) चन्द्रानन नाथ (१३) भद्रबाहुस्वामी (१४) भुयंगमप्रभु (१५) ईश्वर (१६) नेमिप्रभु (१७) वीरसेन (१८) महाभद्र (१९) देवयश [२०] अजितवीर्य ।

पृ०- पृथ्वीयते जीवाद्युवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्त. गंव ममामाः ॥५॥

अर्थ- जीवसमाससे प्रयोजन उन ठिकानों से है जिनमें जीव रहते हैं। अथवा उन खातों को भी जीव समास कहते हैं जिनमें एक समान जाति के जीव रखाये जाते हैं, रक्खे जाते हैं या,एकत्र किये जाते हैं । ऐसे खाते या जीवसमास भिन्नदृष्टिकोणों से देखने पर कई प्रकार के होते हैं । यहाँ बीस भेद वाले जीवसमास को लिखा जा रहा है नाम उनके इस प्रकार हैं ।

१- पृथ्वी पर्याप्त २- पृथ्वी–अपर्याप्त ३- अप [जल] पर्याप्त ४- अप अपर्याप्त ५- तेजो पर्याप्त ६- तेज अपर्याप्त ७- वायुपर्याप्त ८- वायु अपर्याप्त ९- वनस्पति पर्याप्त १०- वनस्पति अपर्याप्त ११- द्वीन्द्रिय पर्याप्त १२ द्वीन्द्रिय– अपर्याप्त १३- त्रीन्द्रिय पर्याप्त १४- त्रीन्द्रिय अपर्याप्त १५-

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त १६- चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त १७- संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्त १८- संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त १६- असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्या २०- असंज्ञीपंचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सूत्र— तन्द्रातिनिद्रतागौरव मुखमाधुर्यमुखलेपप्रसेक श्वेतावलोकनश्वेतविड्श्वेतमूत्रताश्वेताङ्गवर्णतोष्णेच्छातिकलकामता मलाधिक्यशुक्रबाहुल्य बहुमूत्रतालस्यत्वंके मंदबुद्धित्वतृप्तिघर्घरवाक्यताचैतन्यानि कफकोपसमुत्थाः

अर्थः- प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें वातपत्ति और कफ, की मात्रा पाई जाती है जब तक इनकी साम्य अवस्था रहती है मानव अपने आपको पूर्ण स्वस्थ समझता है वह निरोग अवस्था वाला कहलाता है । जब कभी आहार विहारादिक की अव्यवस्था से इनकी गिनती विषमता आती है और किसी एक दो या सभी का प्राबल्य बढ़ जाता है, तब अनेक प्रकार की व्याधियाँ शरीर पर अपना प्रभाव व्यक्त करने लगती हैं । इस सूत्र में उन व्याधियों का उल्लेख किया गया है जो कि कफ के कुपित हो जाने पर उदित हो उठती है और पीड़ा पहुंचाने लगती हैं । व्याधियों की संख्या बीस है और नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं :-

(१) तन्द्रा नामक व्याधि (२) अतिनिद्रता (३) गौरव (४) मुखमाधुर्य (५) मुखलेप (६) प्रसेक (७) श्वेतावलोकन (८) श्वेतविट्त्व (६) श्वेतमूत्रता १०- श्वेता-

ह्वत्गौता ११- उष्णेच्छा १२-निवत्तकामता १३-मलाधिक्य १४ शुक्रबाहुल्य १५-बहुमूत्रता १६-आलस्य १७-मंदबुद्धित्व १८-तृप्ति १९-घर्घरवाक्यता २०- अचैतन्य।

१-तन्द्रासे प्रयोजन मानव की उस अवस्था से है जब कि वह कफ की कुपितता से ढीला अर्धनिद्रित अवस्था में उठता बैठता फिरता है।

२-अतिनिद्रता- कफ प्रकृति की आधीनता को प्राप्त व्यक्ति प्रायः सोता रहता है। कभी कभी तो चलता जाता और सोता जाता भी है। यह रोग कफ के कोप से प्रगट होता है।

३ गौरवः- कफ के कारण मानव को अपना शरीर भारी भारी सा अनुभव होने लगता है।

४- मुखमाधुर्यः- मुख में मीठा मीठापन सा बना रहता है। कफ प्रकृति वाले व्यक्ति को मात्र मीठा सा मुहं में मालूम पड़ता है जब कि कफ का जोर ज्यादा बढ़ जाता है।

५-मुखलेपः- कफ के कारण मानव मुखपर चिक्कणता की झलक भी दिखाई देती है।

६- प्रस्वेद-प्रकर्ष रूप से स्वेदबिन्दु भी झलकते हैं कफ के जोर से।

७- श्वेतावलोकन- कफ के कारण जिससे अवलो-

८- श्वेतविड्त्वः- कफ का प्रावल्य होने पर पुरुष के मल ,टट्टी, का रंग भी सफेद हो जाता ।
९-श्वेतमूत्रता- कफ के प्रभाव के कारण पुरुषादि रुग्ण प्राणियों का मूत्र -पेशाब- भी श्वेत वर्ण का हो जाता है।

१०- श्वेताङ्गवर्णता:- श्वेत वर्ण की इतने से ही इति नहीं हो जाती । कफ का प्रभाव बढ़ने पर रोगी व्यक्ति का सारा शरीर भी सफेद हो जाता है।

११- उष्णेच्छा:- कफ से ग्रसित व्यक्ति को ठंड का अनुभवन होता है अतः वह उष्णता या गर्मी की इच्छा करता है ।

१२-: तिक्तकामता चुंकि कफ के कारण मुंह का स्वाद मीठा रहता है अत' वह तीखे और चरखे स्वाद वाले पदार्थों के खाने की इच्छा करता है ।

१३- मलाधिक्यः कफ के कारण रोगी के मल नाक, खकार, थूक आदि) की अधिकता हो जाती है।

१४- शुक्रबाहुल्य शुक्र का अर्थ वीर्य से उसकी भी स्थिति में भी कफ के कारण अंतर आता है।

१५- बहुमूत्रता:- कफ के कारण मनुष्य को बहुत ज्यादा मूत्र की बाधा होती है ।
कफ का काम लिया जाता है ऐसे नेत्र भी सफेद सफेद हो जाते हैं ।

१६- आलस्यः— कफ के कारण रोगी आलसी हो जाता है।

१७- मंदबुद्धित्व— मानव के शरीर पर ही नहीं अपितु उसके मस्तिष्क पर भी कफ का प्रभाव पड़ता है। उसकी बुद्धि मद पड़ जाती है और प्रायः निठल्ला या बेवकूफ सा अपने आपको सिद्ध करता रहता है।

१८- घर्घरवाक्यताः— कफ के कुपित होने से दुःखी रोगी जब भी शब्द अपने मुंह से निकालता है तो उससे एक घर्घर की जैसी ध्वनि भी साथ साथ में निकलती है।

२० अचैतन्यः— कफ का जोर जब बहुत ज्यादा बढ़ता है तो उसे बेहोशी होने लगती है। वह प्राय मूर्च्छित सा होने लगता है।

सूत्रः— गुणस्थानजीवसमासपर्याप्तिप्राणसंज्ञोपयोगगतीन्द्रियकाययोग वेदकषायज्ञानसंयमदर्शनलेश्याभव्यत्वसम्यक्त्वसंज्ञ्याहारकमार्गणा जीवप्ररूपणमुख्यस्थानानि॥५॥

अर्थः— जिसमें जानने देखने की शक्ति हो या जो जीवे उसे जीव कहते हैं। इस जीव के स्वरूप को विशद रूप से विवेचित करने के लिये बीस स्थान पर अधिकार हैं। नाम उन अधिकारों के पृथक इस प्रकार से हैं:-

(१) गुणस्थान नामक जीव प्ररूपण स्थान (आगे लिखे जाने वाले प्रत्येक नाम के साथ भी नामक में साथ

जीव प्ररूपण स्थान पद जोड़ लेना चाहिये ।) (२) जीव समास (३) पर्याप्ति (४) प्राण (५) संज्ञा (६) उपयोग (७) गति मार्गणा (८) इन्द्रिय मार्गणा (९) काय मार्गणा (१०) योग मार्गणा (११) वेद मार्गणा (१२) कषाय मार्गणा (१३) ज्ञान मार्गणा (१४) संयम मार्गणा [१५]दर्शन मार्गणा [१६]लेश्या मार्गणा [१७] भव्यत्व मार्गणा [१८] सम्यक्त्व मार्गणा [१९] संज्ञी मार्गणा [२०] आहारक मार्गणा ।

१-गुणस्थान नामक स्थानः— मोह और योग के निमित्त सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप आतमा के गुणों की जो तारतम्य रूप (उतार चढ़ाव वाली) अवस्था होती है उसे गुण स्थान कहते हैं । गुणस्थान इस लिये भी कहते हैं कि इनसे जीव पहिचाने जाते हैं । गुणस्थान चौदह होते हैं । इनका विस्तार अन्यत्र देख लेना चाहिये ।

२-जीवसमास नामक स्थानः— जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जाय उन धर्मों को जीव समास कहते हैं । वे धर्म विशेष इसके अंर्गत आते हैं जिनके द्वारा अनेक जीव एवं उनकी अनेक जातियों का संग्रह किया जाता है ।

३- पर्याप्ति नामक अधिकारः- उस शक्ति की

पूर्णता का नाम पर्याप्ति है जो ग्रहण किये गये आहार वर्गणा को रस भागादि रूप परिणमवासके। ये छह होती हैं।

४ प्राण नामक अधिकार:- जिनके सद्भाव या पाये जाने पर जीव में जीवित का और अभाव होने पर मरण पने का व्यवहार हो उन्हें प्राण कहते हैं। ऐसे बाह्य प्राणों की संख्या दस है। भिन्न भिन्नजोवोंके कर्म के क्षयोपशम के अनुसार भिन्न संख्यावाले प्राण होते हैं।

५- संज्ञा नामक अधिकार:- जिनसे संक्लेशित होकर जीव इस लोक में और जिनके विषय का सेवन करने से परलोक में इस प्रकार दोनों भवों में दारूण दुःख को प्राप्त करता है उनको संज्ञा कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं। ये चारों प्रकार की संज्ञाएं प्राणी को विषय भोगों में प्रवृत्ति कराती हैं। इनसे पतन होता है।

उपयोग नामक अधिकार- अंतरंग एवं बहिरंग निमित्त के वश से पैदा होने वाला जो चैतन्यानुविधायी परिणाम होता है उसे उपयोग कहते हैं। उपयोग के मुख्य दो भेद हैं। १- दर्शनोपयोग २- ज्ञानोपयोग क्रमश इनके चार और आठ भेद हैं। ७- गतिमार्गणा नामक अधिकार:- गति नाम कर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्या को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण

को गति कहते । इसके चार भेद हैं।

८- इन्द्रियमार्गणा नामक अधिकार–इन्द्र के समान जो अपने अपने विषयों में स्वतंत्र हों उन्हें इन्द्रिय कहते हैं इन्द्रियाँ पाँच होती हैं। इनके लिये मतिज्ञानावरण कर्म केक्षयोपशम तथा शरीर नामकर्म के उदय की आवश्यकता होती है।

९- कायमार्गणा नामक अधिकार :–जाति नाम कर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को काय कहते हैं। इसके मुख्य दो भेद हैं (१) स्थावर काय (२) त्रस काय।

(१०) योगमार्गणा नामक अधिकार:–पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्म के उदय से मन वचन काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उस ही को योग कहते हैं। मन, वचन और काय रूप तीन प्रकार का योग होता है।

११- वेद नामक अधिकार:– वेद नामक नो कषाय के तथा आंगोपाङ्ग नामक नाम कर्म के उदय से यह होता है। इसके मुख्य तीन भेद होते हैं पुरुष वेद स्त्रीवेद नपुंसक वेद। प्रायः भाववेद और द्रव्य भेद में साम्य पाया जाता है किन्तु कभी कभी विषमता भी पाई जाती है।

१२- कषाय मार्गणा नामक अधिकार:– सम्यक्त्व

देशचारित्र सकलचारित्र तथा यथाख्यात चारित्र के परिणामों का जो घात करे, इनको न होने देवे, उसे कषाय कहते हैं। मुख्य चार और अन्यथा असंख्यात लोकप्रमाण इसके विकल्प या भेद होते हैं।

(१३) ज्ञानमार्गणा नामक अधिकारः- जिसके द्वारा जीव तीनों काल (वर्तमान, भूत, भविष्यत) संबंधी समस्तद्रव्यों एवं उनके गुण तथा विविध पर्यायों को जाने उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के मुख्य पांच भेद होते हैं।

१४- संयममार्गणा नामक अधिकारः- संसार में रुलाने वाली अंतरंग और बाह्य क्रियाओं का निरोध करना सम्भव है अथवा पांच महाव्रतों को धारण करना समितियों को पालना, कषायों का निग्रह करना, मनवचन कायका नियंत्रण रखना तथा पञ्चेन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करना संयम है। इसके मुख्य दो भेद हैं:- देश संयम और सकलसंयम।

१५- दर्शनमार्गणा नामक अधिकारः जीव वस्तुओं का दो रूप से परिज्ञान प्राप्त करता है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके केवल सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। इसके मुख्य चार भेद हैं।

(१६) लेश्यामार्गणा नामक अधिकारः- कषाय

या कषायों से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। अथवा जिसमें या जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे, उसके (पुण्य और पाप के) आधीन करे उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या छह प्रकार की होती है कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

१७- भव्यत्वमार्गणा नामक अधिकारः— जिन्हें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख रूप अनन्त चतुष्टयों की सिद्धि होने वाली है अथवा जो उसके प्राप्ति के योग्य हों उनको भव्य कहते हैं। इन भव्योंकी संख्याको जानने के लिये समस्त संसारिक जीवराशिमें जघन्य युक्तानन्तप्रमाण अभव्य राशी को घटाना, होगा। अवशिष्टजीव राशि भव्यों की संख्या बतलाने वाली होगी।

१८-सम्यक्त्व मार्गणा नामक अधिकार, जीवादिक छह द्रव्य, बहुप्रदेशी जीव पुद्गलादिक पंचास्तिकाय और जीवाजीवादि रूप नव पदार्थो का स्वरूप जिनेन्द्र भगवान ने जैसा विवेचन किया है वह वैसा ही है अन्यथा नहीं है, इस प्रकार से जो अटल दृढ़ श्रद्धान होना है उसे सम्यक्त्व कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है (१) निसर्ग से (२)अधिगम से।

१९- संज्ञी मार्गणा नामक अधिकारः— संज्ञा से

यहां प्रयोजन नो इन्द्रियावरणकर्मके क्षायोपशम से है। इस क्षयोपशम से जो ज्ञान होता है उसे भी संज्ञा कहते हैं। जिन जिन जीवों के उपरिलिखित स्वरूप वाली संज्ञा पाई जाती है, जो लब्धि या उपयोग रूप मन से युक्त होते हैं वे संज्ञी कहलाते हैं। जिनके संज्ञा या मन नहीं होता वे असंज्ञी कहलाते हैं।

२०- आहारकमार्गणा नामक अधिकार:- औदारिक, वैक्रयिक, आहारक रूप तीन शरीरोंमें से किसी भी एक शरीरके योग्य वर्गणाओंको तथा वचन और मनके योग्य वर्गणाओं को यथायोग्य जीवसमास में तथा काल में जीव आहरण करता है अतः यह आहारक कहलाता है। विग्रहगति को प्राप्त जीव, प्रतर तथा लोकपूर्ण समुद्घात करने वाले केवली, अयोग केवली और सिद्ध के अतिरिक्त सभी जीव आहारक होते हैं।

सूत्र:—क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रेमतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिकदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि मनुष्यगत्यज्ञानासिद्धत्वशुक्ललेश्याजीवत्वभव्यत्वेक्षीणमोहेभावाः ॥१८॥

अर्थः- बारहवें गुणस्थान में जिसका कि नाम क्षीणमोह गुणस्थान है, रहने या पाये जाने वाले जीव के बीस भाव होते हैं। भावोंके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं:-

१- क्षायिक सम्यक्त्व भाव २- क्षायिक चारित्र भाव ३- मति ज्ञान ४- श्रुतज्ञान ५- अवधिज्ञान ६- मनःपर्यय ज्ञान ७- चक्षुदर्शन ८- अचक्षुदर्शन ९- अवधि दर्शन १०- क्षायोपशमिक दान ११- क्षायोपशमिक लाभ १२-क्षायोपशमिक भोग १३- क्षायोपशमिक उपभोग १४- क्षायोपशमिक वीर्य १५ मनुष्य गति १६- अज्ञान भाव १७- असिद्धत्व भाव १८ शुक्ल लेश्या १९- जीवत्वभाव २०- भव्यत्व भाव।

सूत्र— स्निग्धरूक्षशीतोष्णमृदुकठोरगुरुलघुस्पर्शकृष्णनीलपीतरक्तश्वेतवर्णाम्लमधुरकटुतिक्तकषायितरससुरभिदुरभिगन्धनामकर्माणिपुण्यपापोभय कृतः॥११॥

अर्थ-नाम कर्म की तेरानवें प्रकृति होती हैं इन प्रकृतियों में बीस प्रकृतियाँ ऐसी हैं जो पुण्य परमाणुओंके उदय के सम्बन्धको प्राप्तकर पुण्यरूप परिणत हो जाती हैं। यही बीस प्रकृतियाँ जब पापरूप परमाणुओंके उदयसे संबंधित होती हैं तो पाप रूप परिणत हो जाती हैं। यही कारण है कि इन प्रकृतियों को उभय प्रकृति के नाम से पुकारा गया है प्रकृतियों के अलग अलग नाम इस प्रकार हैं:-

१- स्निग्ध (चिकना) स्पर्श २- रूक्ष (रूखा) स्पर्श ३-शीत(ठंडा) स्पर्श ४-उष्ण (गर्म) स्पर्श५-मृदु (कोमल) स्पर्श ६- कठोर स्पर्श ७- गुरु (भारी) स्पर्श ८- लघु

(हल्का) स्पर्श ६- कृष्ण (काला) वर्ण १०- नील वर्ण ११ पीत [पीला] वर्ण १२- रक्त [लाल] वर्ण १३- श्वेत [सफेद वर्ण] १४- आम्ल [खट्टा] रस १५- मधु[मीठा] रस १६- कटु [कड़वा] रस १७- तिक्त(तीखा या चिर ता) रस (१८) कषायित (आंवला जैसा कषायला) रस १६-सुरभि (खुशबू, अच्छी मीठी) गंध २०- दुरभि (बदबू खराब गंध) गंध।

सूत्रः—अशुभविचारकुसंगक्रोधमानलोभच्छलेर्ष्याचिन्ताभयशंकानिन्दालस्यपक्षपातलज्जानिर्दयताऽसत्यमोहहठानुरसादि पत्याागमनःशुद्धि कारणानि॥१२.

अर्थः- मानव का मानव पटल व्यसनों कुभावनाओं वासनाओं एवं ममतारूप मदिरा से इतना ज्यादा कलुषित एवं जर्जरित हो गया है कि उसकी कालिमा किट्टिमादि के उपायों या साधनों को अपने मनमंदिर से बाहर निकाल फेंकने के लिये वह व्याकुल हो उठा है।'मानव के शुद्धि करण की परमावश्यकता हैं शाश्वतिक सुख और शांति के लिये इस सूत्र में बीस ऐसी बातों का उल्लेख किया गया है जिनकी कि निवृत्ति मन को निर्मल बना देती है। जिन बातों को परित्याग करके धारण करना चाहिये उन बातों बातों के नाम अलग अलग इस प्रकार हैं :-

१-अशुभ विचार त्याग २- कुसंग त्याग ३- क्रोध त्याग ४- मान त्याग ५- लोभ त्याग ६- छल त्याग

७- ईर्ष्या त्याग ८- चिंता त्याग ९- भय त्याग १०- शंका त्याग ११- निन्दा त्याग १२-आलस्य त्याग १३- पक्षपात त्याग १४- लज्जा त्याग १५-निर्दयता त्याग १६- असत्य त्याग १७- मोहत्याग १८- हठत्याग १९- आतुरता त्याग २०- द्वेष त्याग।

मानस मंदिरको मल रहित कर उसे शुद्ध करने के लिये मानवको कुछ उपाय बतलाये गये हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि इस निवृत्यात्मक पथका आलम्बन लिया गया तो ऐसी कोई सरल या बाधा नहीं है जो चरम लक्ष्य की प्राप्तिमें बाधक हो सके। मन शुद्ध ही नहीं अपितु निर्मल हो सरल हो जायगा। सबसे पहिले इसके लिये उसे।

(१) अशुभ विचारों का परित्याग करना होगा। अशुभविचारों से प्रयोजन स्व और पर के प्राणों को घात करने वाले विचारों से है इनसे अपने आपको मुक्त रखना होगा। ऐसा होने पर मन में दयाभाव पैदा होंगे।

(२) कुसंग त्यागः मनकी शुद्धिके लिये इस गुण की आवश्यकता बहुत ज्यादा जरूरी है। सोहबत या संगति का असर या प्रभाव सिर्फ शरीर और वचन पर ही नहीं, अपितु मन पर भी धावा मारता। यदि आक्रमण सफल हुआतो मानव कुसंगतिके जालमें फँस जाता है और अपनी सुध बुध खोकर मिट्टी में मिल जाता है।भले

आदमीकी संगति यदि उन्नतिकी ओर लेजाता है तो कुसंगति पतनकी ओर। मनकी शुद्धिके लिये कुसंग त्याग सहायता देने वाला सुझाव अकारण है। इसके अभावमें मनः शुद्धि के प्रयत्न निष्फल हैं।

.. क्रोध त्यागः- क्रोध और गुस्सा पर्यायवाची शब्द हैं। क्रोधसे बुद्धि तो विकृत होती ही है किन्तु मन में भी खराबी पैदा हो जाती है। आवेश में आकर आदमी अनेक अकृत्यों को कर डालता है। मन, शुद्धि के लिये क्रोध त्याग भी जरूरी है।

(४) मान त्यागः- मान के रहते हुए आत्मावलोकन की वृत्ति का पैदा होना असंभव है। गर्वके गिरिपर आरुढ़ व्यक्ति अपने से अतिरिक्त अन्य प्राणियोंको तुच्छ मानता है, उन्हें हिकारत की निगाह से देखता है परिणाम यह होता है कि मन में अशुद्धि या विकार की की वृद्धि होती जाती है। बजाय हल्के होने के बोझा बढ़ता जाता है। इसके हटाने के लिये मानव को चाहिये कि वह अपने आपको नमावे, विनम्र बनावे। ऐसा करनेसे मन की निर्मलता में वृद्धि होगी।

(५) लोभ त्यागः- लालच को धर्मशास्त्र के वेत्ताओं ने पाप का बाप बतलाया है। सांसारिक सामग्री के समेटने की भावना ने समस्त सत्वोंको अशांत कर रक्खा है

दिन रात उनके बटोरनेमें लगा रहता है पसीना बहाता है और कभी रुपया पैसा इकट्ठा हो जाता है तो उसकी मुच्छाकी चिन्ता रातभर लगी रहती है। इन अशान्तियों से छुटकारा पाने के लिये तथा मन की निर्मलता की वृद्धि के लिये लोभ का परित्याग प्रत्येक प्राणी को कर देना चाहिये। लोभ के रहते हुए अन्य सत्प्रयत्न फल नहीं दिखला पाते हैं।

६- छल त्याग छल से प्रयोजन माया या कपट पूर्ण व्यवहार से है। छल से युक्त व्यक्ति के हृदय में कतरनी चलती रहती है। उसके विचार कुछ वचन कुछ और क्रियाएं कुछ और ही होती हैं। छल पूर्ण प्रवृत्ति से लोक के जन विश्वास करना छोड़ देते हैं। मायावी सतत आर्त एवं रौद्र परिणामों वाला होता हुआ विकल रहता है। इस विकलता को दूर करने और मन को मुदित रखने के लिये छल त्याग को अपनाना चाहिये।

७- ईर्ष्या त्याग जो एक दूसरे की वृद्धि को देख मन में जलन या कुढ़नकेभावों का होता है उसे ईर्ष्या कहते हैं। मनकी निर्मलताके लिये ईर्ष्याके अंकुरों का अपने हृदय स्थल में पैदा नहीं होने देना चाहिये।

८- चिन्ता त्याग - चिन्ता को चिता से भी भयंकर एवं हानि कारक बतलाया गया है। चिता जला कर एक दफे राख कर देती है किन्तु चिंता एक ऐसी

आग है जो हमेशा भीतर ही भीतर तुलगती रहती है और इस प्राणी को जलाती रहती है। इष्टवियोग एवं अनिष्टसंयोगमे मनमन्दिरमें चिन्ता पैदा होती है इसको ममतारूपपरिणामोंको कम करके, दूर करना चाहिये।

(९) भयत्यागः– भयका अर्थ डर है। इससे मन में धुकधुकी एवं अशान्ति रहती है। इसको दूर करने के लिये आत्माके वास्तविक अजर अमर स्वरूप का चिन्तवन करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनमें शान्ति और साहस का संचार होता है।

(१०) शंकात्यागः– मन की अस्थिर एवं डंवा-डोलवृत्तिसे जो परिणाम होतेहैं उनका शंकासे बहुत निकट का संबंध पाया जाता है। शंकित वृत्ति वाला व्यक्ति क्या धार्मिक, क्या राजनैतिक, क्या आर्थिक, क्या राष्ट्रीय, क्या सामाजिक क्या व्यापारिक किसी भी क्षेत्रमें सफलता प्राप्त नहीं करपाता है। अतः शंकाको दूर उसे श्रद्धालु होना चाहिये। परन्तु इसका यह प्रयोजन कभी भी नहीं है कि वह अंधश्रद्धा को अपना लेवे।

(११) निन्दात्यागः– निन्दासे प्रयोजन दूसरे की बुराई करने से है। इस बुराई करने में दूसरे काअहित तो होता ही है किन्तु बुराई करने वाले व्यक्ति को अपने मन वचन और कार्य को कलुपित करना पड़ता है।

साथ ही इसके जिसकी निन्दा की जाती है वह वैर भाव को कर बदला लेने की ठानता है। इस तरह अनेकों ही आपत्तियाँ इससे पैदा होती हैं। मनकी शुद्धि के लिये निन्दाका भी परित्याग करना चाहिये। शुद्धि और पर-निन्दा विरोधी बातें हैं।

(१२) आलस्यत्यागः- आलसी और निठल्ले आदमीका मन शैतानका निवासस्थान हुआ करता है। उसके हृदयमें बजाय अच्छे विचारोंके बुरे विचार पैदा होते हैं। मस्तिष्क के संतुलनकी बात तो एक तरफ वह बद्दर हो जाता है। इन सब खराबियों को दूर करने के लिये और मनको निराकुल बनाने के लिये आलस्यके दूर से ही हाथ जोड़ना चाहिये।

(१३) पक्षपातत्यागः- मस्तिष्क और मनका पारस्परिक संबंध है। मनमें खराबी होनेसे मस्तिष्क में और मस्तिष्क संबंधी अव्यवस्थासे मनमें अस्त व्यस्तता आ जाती है। किसी एक पक्ष या पार्टी विशेष के प्रति जो विशेष झुकाव होता है उसमें अच्छेपन या बुरेपन का विभेद न करते हुए जो समर्थन किया जाता है उसे पक्षपात कहते हैं। इसका संबंध पहिले मस्तिष्क और फिर मन से होता है। जब मानव पक्षमोहके जालमें पड़ जाता है तो जिस किस तरह से अपनी हठ की पूर्ती में

लग जाता है। मानसिक शुद्धि के लिये इसे अपने पास नहीं फटकने देना चाहिये।

(१४) लज्जात्यागः- मनकी शुद्धिके लिए संकोच शीलता हित कारिणी नहीं है। संकोचशीलता के कारण मन में नाना संकल्प विकल्प पैदा हो अशान्ति पैदा करते रहते हैं। अतः यह त्याज्य या अननुकरणी है।

(१५) निर्दयताः- मनको कलुषित करने वाले परिणाम यदि ज्यादा प्रभाव कारक है तो वे हैं हिंसा के हिंसा से शारीरिक अंगोपांगों मे विकृति, वचन में कटुता तथा मन में कलुषता झलकती है। इसी के कारण अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ अपना घर बना लेती हैं और मनुष्य उनका गुलाम होकर अनेकों कष्टों को भोगता फिरता है। निर्दयता के इस स्वरूप को दृष्टि में रख उसे छोड़ देना चाहिये। ऐसा करने से मन में निर्मलता के परिणाम पैदा होंगे।

१६- असत्यत्यागः- असत्य कहते हैं झूठ को। यह लोक में जहाँ अप्रतिष्ठाको प्रदान करने वाला है वहीं अनेक अवमाननाओं का पात्र भी इससे पुरुष होता है असत्य वादी विश्वासपात्रता को भी खो बैठता है साथ ही उसे अपने एक असत्य को प्रमाणीक सिद्ध करने के लिये अनेकों असत्यों का आश्रय लेना पड़ता है। इतने

पर भी वह सफल नहीं हो पाता है। मन में प्रति समय अनेकों ही प्रकार की दुरभिसन्धियाँ पैदा होती हैं। इन सब झंझटों से और मानसिक अशांति से मुक्ति पाने के लिये असत्य का त्याग।

१७- मोह त्यागः- सांसारिक विषय भोगों में अनुरागी होना मोहीपन को व्यक्त करता है। यही वृत्ति वस्तुतः इस प्राणी के लिये विभ्रमोत्पादक है। इस चश्मे को चढ़ा प्राणी इतनी ज्यादा अपनी दृष्टि को विकारी बना लेता है कि वस्तु के असली स्वरूप का भान नहीं हो पाता। पर पदार्थों में स्वत्व स्वामित्व एवं नित्यत्व की कल्पना कर उन्हे पालता पोषता है और उन का वियोग होने पर दुःखी होता है। इस शोक और दुःख से मन को मुक्त करने के लिये मोहरूपवृत्ति का परित्याग आवश्यकीय हैं

१८- हठः- मन में उस समय बहुत ज्यादा उथल पुथल मच जाती है जब यह मानव किसी आग्रह विशेष या हठ को पकड़ बैठ जाता है। इसके कारण न जाने कहाँ और कैसे कैसे विकल्पों और कुतर्कों को करने के लिये आदमी तैय्यार हो उठता है। वह अपने आपको खतरे में डालने से भी नहीं हिचकता। मन की शुद्धि को अशुद्धि रूप परिणत करने वाली इस हठ रूप परिणति को भी छोड़ना चाहिये।

१६- आतुरता त्यागः- आतुरता का अर्थ सामान्य रूप से बेचैनी है। इस बेचैनी के अनेकों ही कारण हो सकते हैं। इस को भी मन से निकाल फेंकना चाहिये। पुरुष का या प्राणी का कर्तव्य है कि आतुरता को- चाहे वह आधि जन्य हो या व्याधि जन्य, अनिष्ट संयोग जन्य हो या इष्ट वियोग जन्य हो- शांति के साथ सहन करते हुए पार कर जाय। ऐसी न करने पर पुरुष के पास अशांति के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता है।

२०- द्वेष त्यागः- द्वेष का अर्थ पारस्परिक कलह या वैरभाव है। इससे मन में कैसी गुजरती है यह प्रायः प्रत्येक संसारी प्राणी को परिज्ञात ही नहीं अपितु उनके अनुभव में आयुकी परिणति है। द्वेष सम्पन्न व्यक्ति न्याय अन्याय का कुछ भी ख्याल न कर अपनी भीतरी सुलगी आग को कार्यरूप में परिणत करने के लिये प्रयत्न करता है। राजकीय दण्ड का पात्र बनता है और दुःखी होता फिरता है। पुरुष को चाहिये कि द्वेष कर लेवे उस से नेह न करे। इन बीस बातों को जीवन में उतारने से मानव को मानसिक शांति मिलती है और उसकी (मन की) शुद्धि होती है।

सूत्रः— ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रुभयनिवारणाय ठः ठः नमः स्वाहा इति संमतिश्रीसौभाग्यविजयबुद्धिलाभनिमित्तोपिशान्यतरमंत्रः— ॥२०॥

अर्थ सूत्र में एक मंत्र उल्लिखित है। यह ऋद्धि मंत्र है और है बीस अक्षर वाला है मंत्र के निमित्त से संतति की प्राप्ति होती है, श्री (लक्ष्मी- शोभा) की प्राप्ति होती है, सौभाग्य की प्राप्ति होती है, प्रतिपक्षी जनों पर एवं बाधाओं पर विजय मिलती है और बुद्धि का भी लाभ हो जाता है। मंत्र के बीस अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:-

ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः श त्रु भ य नि वा र ण य ठः ठः न मः स्वा हा।

(अपूर्ण)

-इकीहवां अध्याय-

सूत्र :- केवलज्ञानदर्शावरणनिद्रानिद्रानिद्राप्रचला प्रचलास्त्यानगृद्धिमिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यान्वानन्तानुबंध्य-प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभः सर्वघाति-प्रकृतयः।१।

अर्थ- सर्वघातिप्रकृतियों के द्वारा उन प्रकृतियों का बोध होता है जो जीवके अनुजीवी गुणोंका समूचे रूपसे घात करती हैं। प्रकृतियाँ अपने प्रतिपक्षभूत गुण का घात करती है। उदाहरण के लिये केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है यह जीव के,अपने प्रतिपक्ष भूत, ज्ञान गुण का घात करेगी। ऐसी सर्वघाति प्रकृतियाँ इकीस होती हैं। नाम उनके अलग अलग यों हैं -

(१) केवलज्ञानावरण नामक सर्वघाति प्रकृति (इसी तरह आगे लिखे जाने वाले नामों के साथ नामक सर्व-घाति प्रकृति' पद जोड़ लेना चाहिए) (२) केवल दर्शनावरण (३) निद्रा (४) निद्रानिद्रा (५) प्रचला (६) प्रचला प्रचला (७) स्त्यानगृद्धि (८) मिथ्यात्व (९) सम्यङ्मिथ्यात्व (१०) अनन्तानुबंधी क्रोध (११) अनन्तानुबंधी मान (१२) अनन्तानुबंधी माया (१३) अनन्तानुबंधी लोभ (१४) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (१५) अप्रत्याख्यानावरण मान (१६) अप्रत्याख्यानावरण माया (१७) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (१८) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (१९) प्रत्याख्यानावरणमान (२०) प्रत्याख्यानावरण माया (२१) प्रत्याख्यानावरण लोभ ।

सूत्र — नरक तिर्यग्मनुष्यदेवगतिक्रोधमानमायालोभकषायपुंस्त्रीनपुंसकवेदमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमासिद्धत्वकृष्णनीलकापोतपीतपद्मशुक्ललेश्या औदयिकभावाः ॥२॥

अर्थ - इस सूत्र में औदयिक भावों को गिनाया गया है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से जो कर्म फल देता है उसे उदय कहते हैं। इस उदय से जो भाव होते हैं उन भावोंको औदयिक भाव कहते हैं। ऐसे औदयिकभावों की संख्या इक्कीस है। नाम उनके अलग अलग इसप्रकार से हैं :—

१- नरकगति नामक औदयिकभाव (इसी तरह आगे के नामों के साथ 'नामक औदयिक भाव, पद जोड़ लेना चाहिये। २- तिर्यग्गति ३- मनुष्य गति ४- देवगति ५- क्रोध कषाय ६- मान कषाय ७-माया कषाय ८- लोभ कषाय ९- पुंवेद १०- स्त्री वेद ११- नपुंसक वेद १२- मिथ्यादर्शन १३- अज्ञान १४- असंयम १५- असिद्धत्व १६- कृष्ण लेश्या १७- नील लेश्या १८- कापोत लेश्या २०- पद्म लेश्या २१- शुक्ल लेश्या

सूत्र.— पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायविकलसकलेन्द्रियपर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ताःजीवसमासाः॥३॥

अर्थ— जिन ठिकानों में जीव रहते हैं उनको जीव समास कहते हैं। यहाँ जीव समास के इकीस भेदों को बता या जा रहा है। भेदों के नाम इस तरह हैं:—

१- पृथ्वी पर्याप्त २- पृथ्वी निवृत्यपर्याप्त ३- पृथ्वी लब्ध्यपर्याप्त ४- अप (जल) पर्याप्त ५- अप निवृत्य पर्याप्त ६- अप लब्ध्य पर्याप्त ७- तेज (अग्नि) पर्याप्त ८- तेज निवृत्य पर्याप्त ९- तेज लब्ध्यपर्याप्त १०- वायु (हवा) पर्याप्त ११- वायु निवृत्यपर्याप्त १२- वायु लब्ध्यपर्याप्त १३- वनस्पतिकाय पर्याप्त १४ वनस्पतिकाय निवृत्य पर्याप्त १५- वनस्पतिकाय लब्ध पर्याप्त १६- विकलेन्द्रिय पर्याप्त १७- विकलेन्द्रिय निवृत्यपर्याप्त १८- विकलेन्द्रि

लब्ध्यपर्याप्त (१६) सकलेन्द्रिय पर्याप्त (२०) सकलेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्त (२१) सकलेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त ।

सूत्र- अनन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमाया लोभभयजुगुप्साहास्यरतिपुंवेदे' सदमोहनीयै कविंशकवंधस्थानप्रकृतयः॥४॥

अर्थ- इक्कीस प्रकृतिवाले मोहनीय कर्म के बंधस्थान की इक्कीस प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं:-
(१) अनन्तानुबंधी क्रोध (२) अनन्तानुबंधी मान (३) अनन्तानुबंधीमाया (४) अनन्तानुबंधीलोभ (५) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (३) अप्रत्याख्यानावरण मान (७) अप्रत्याख्यानावरण माया (८) अप्रत्याख्यानावरण लोभ (६) प्रत्याख्यानावरण क्रोध (१०) प्रत्याख्यानावरण मान (११) प्रत्याख्यानावरण माया (१२) प्रत्याख्यानावरण लोभ (१३) संज्वलन क्रोध (१४) संज्वलन मान (१५) संज्वलन माया (१६) संज्वलन लोभ (१७) भय (१८) जुगुप्सा [१६] हास्य [२०] रति [२१] पुंवेद ।

सूत्र-: हास्यरतिस्त्रीवेदैः सहः ॥५॥

अर्थः- इक्कीस प्रकृति वाले मोहनीय कर्म के बंधस्थान की इक्कीस प्रकृतियां इस प्रकार से भी हो सकती हैं:-
पूर्व सूत्र में उल्लिखित अठारह [१८] प्रकृतियाँ अर्थात् (१-४) अनन्तानुबंधी संबंधी क्रोधमान मायालोभ (५-८) अप्रत्याख्यानावरण संबंधी क्रोधमानमायालोभ

(९-१२) प्रत्याख्यानावरण संबंधी क्रोधमानमायालोभ (१३-१६) संज्वलन क्रोधमान मायालोभ (१७) भय(१८) जुगुप्सातथाइसप्रत्रमें उल्लिखित तीनप्रकृतियाँ:-
(१९) हास्य (२०) रति (२१) स्त्रीवेद ।

सूत्र:- अरतिशोकपुंवेदैःसह॥६॥

अर्थ- इक्कीस प्रकृतिक मोहनीयकर्म के बंधस्थान की इक्कीस प्रकृतियाँ इस प्रकार भी हो सकती हैं:-
पहिले सूत्रसे उल्लिखित अठारह प्रकृति तथा अंतिम तीन प्रकृतियों के स्थान पर १- अरति २-शोक ३-पुंवेद ये इन तीन प्रकृतियों को जोड़ देने से इस स्थान की प्रकृतियां बन जाती हैं ।

सूत्र:-अरतिशोकस्त्रीवेदैःसहचा॥७॥

अर्थः इक्कीस प्रकृति वाले मोहनीय कर्म के बंधस्थानकी इक्कीस प्रकृतियाँ उपरिलिखित तरीकों के साथ ही साथ आगे लिखे जाने वाले तरीके से भी बन सकती हैं इक्कीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं:-
[१-१६] अनन्तानुबंधी चार [क्रोधमानमायालोभ, अप्रत्याख्यानावरणी चार, प्रत्याख्याना वरणी चार, संज्वलन संबंधी कुल सोलह १७- भय १८- जुगुप्सा १९-अरति २० शोक तथा अंतिम प्रकृति २१- स्त्रीवेद ।

सूत्र:- अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभा हा-

स्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदाः मोहनीयसत्सप्तमसत्वस्थान प्रकृतयः॥८॥

अर्थ– इक्कीस प्रकृतिवाले मोहनीयकर्म के सातवें सत्वस्थान की इक्कीस प्रकृतियाँ इसप्रकार हैं । नाम अलग अलग लिखे जा रहे हैं:–

१- अप्रत्याख्यानावरण सम्बंधी क्रोध २- अप्रत्याख्यानावरणी मान ३- अप्रत्याख्यानावरणी माया ४- अप्रत्याख्यानावरणी लोभ ५- प्रत्याख्यानावरणी क्रोध ६ प्रत्याख्यानावरणी मान ७- प्रत्याख्यानावरणी माया ८- प्रत्याख्यानावरणी लोभ ९- संज्वलन संबंधी क्रोध १०- संज्वलन संबंधी मान ११- संज्वलन संबंधी माया १२- संज्वलन संबंधी लोभ १३- हास्य १४- रति १५- अरति १६- शोक १७- भय १८- जुगुप्सा १९- पुंवेद २०- स्त्रीवेद २१- नपुंसकवेद ।

सूत्र:– औपशमिकसम्यक्त्वचारित्रे क्षायिकसम्यक्त्वंमतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनक्षायोपशमिकदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि मनुष्यगत्यज्ञानासिद्धत्वशुक्ललेश्याजीवत्वभव्यत्वे उपशान्तमोहे भावाः॥९

अर्थ:– चौदह गुणस्थानोंमें से ग्यारहवें गुणस्थान का नाम उपशान्त मोह है । इस गुणस्थान में पाये जाने वाले भावों की संख्या इक्कीस । उनके (भावों के) अलग अलग नाम इस तरह से हैं:–

१- औपशमिक सम्यक्त्व नामक भाव (इसी तरह अन्य नामों के आगे 'नामक भाव, पद जोड़ लेना चाहिये) २- औपशमिक चारित्र ३-क्षायिक सम्यक्त्व ४- मतिज्ञान ५- श्रुत ज्ञान ६- अवधिज्ञान ७- मनःपर्ययज्ञान ८- चक्षुर्दर्शन ९- अचक्षुर्दर्शन १०- अवधिदर्शन ११-क्षायोपशमिक दान १२- क्षायोपशमिक लाभ १३- क्षायोपशमिक भोग १४- क्षायोपशमिक उपभोग १५- क्षायोपशमिक वीर्य १६- मनुष्य गति १७- अज्ञान १८- असिद्धत्व १९- शुक्ल लेश्या २०- जीवत्व २१ भव्यत्व ।

सूत्र-ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सर्वदोषनिवारणंकुरुकुरुस्वाहाइति संग्रहिण्यादिवारणनिमित्तएकविंशाक्षरमंत्रः ॥१०॥

अर्थः- इक्कीस अक्षर वाला यह ऋद्धि मंत्र है । यह (मंत्र) अनेक संग्रहिणी आदि भयंकर रोगोंको दूर करनेमें निमित्त होता है । इसके इक्कीस अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं

सूत्र-ॐ नमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षयः स्वाहा इति वंदिगृहमुक्तिराजभयवारणनिमित्तः । ११ ।

यह भी ऋद्धि मंत्र है और इक्कीस अक्षरों वाला है बंदीग्रह से मुक्ति दिलाने में यह मंत्र निमित्त है । इतना ही नहीं राज संबंधी कोई भय या आशंका लग रही हो तो उसको भी हटाने में यह निमित्त होता है । मंत्र के अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:-

ॐ न मो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षं क्ष यः स्वा हा ।

सूत्र– प्रतिज्ञाहानिप्रतिज्ञान्तरप्रतिज्ञाविरोधप्रतिज्ञासन्यासहेत्वन्तरार्थान्तर निरर्थकाविज्ञातार्थापार्थकाप्राप्तकालार्थपुनरुक्ताननुभाषणाज्ञानाप्रतिभाप र्यनुयोज्योपेक्षणनिरनुयोज्यानुयोगविक्षेपमतानुज्ञान्यूनाधिकापसिद्धान्त हेत्वाभासानिग्रहस्थानविशेषाः ॥१२॥

अर्थ– इस सूत्र में निग्रह– स्थानों के इक्कीस भेद गिनाये गयेहैं । उनके अलग अलग नाम इस तरहसे हैं:-

१– प्रतिज्ञाहानि, २– प्रतिज्ञान्तर, ३- प्रतिज्ञाविरोध' ४ प्रतिज्ञान्यास, ५– हेत्वन्तर, ६– अर्थान्तर' ७- निरर्थक, ८– अविज्ञातार्थ, ९- अपार्थक, १० अप्राप्तकालार्थ' ११ पुनरुक्त, १२ अननुभाषण १३ अज्ञान, १४ अप्रतिभा, १५ पर्यनुयोज्योपेक्षण, १६ निरनुयोग्यानुयोग, १७ विक्षेप, १८ मतानुज्ञान्यून, १९ मतानुज्ञाधिक, २० अपसिद्धान्त, २१ हेत्वाभास ।

सूत्र-अप्रत्याख्यानावरण संज्वलनक्रोधमानमायालोभ हास्यरत्यरति शोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदाश्च। मिश्रासंयतोदयोग्यामोहनी मिश्रगुणस्थानावअसंयतगुणस्थानमें उदययोग्य

अर्थ– चरित्रमोहनीयकी प्रकृति २१ है

१–४ अप्रत्याख्यानावरणक्रोध, मगन, माया,लोभ । ५–८ प्रत्याख्यानावरणक्रोध , मान, माया, लोभ । ९–१२ संज्वलन क्रोध,मान, माया,लोभ, । १३-हास्य, १४-रति,१५-

अति, १६ शोक, १७ भय, १८ जुगुप्सा, १९ पुरुषवेद, २० स्त्रीवेद, २१ नपुंसकवेद।

(अपूर्ण)

बाईसवां अध्याय

सूत्र– संख्याताण्वसंख्याताण्वनंताणुग्राह्याहाराग्राह्याहारग्राह्यतैजसाग्राह्यतैजसग्राह्यभाषाऽग्राह्यभाषाग्राह्यमनोऽग्राह्यमनःकार्माणध्रुवशून्यबादरनिगोदशून्यसूक्ष्मनिगोद नभोवर्गणामहास्कंध स्कन्धवर्गणाः॥१॥

अर्थ– पुद्गल परमाणुओं के समूह को वर्गणा कहते हैं। वर्गणा के मुख्य दो भेद हैं, एक अणुवर्गणा और दूसरा स्कन्धवर्गणा स्कन्धवर्गणा के बाईस उपभेद हैं। उन भेदों को इस सूत्र में गिनाया गया है। नाम अलग अलग इसप्रकार हैं:–

१- संख्याताणु वर्गणा २-असंख्याताणुवर्गणा ३- अनंताणु वर्गणा ४- ग्राह्याहारवर्गणा ५- अग्राह्याहार वर्गणा ६- ग्राह्यतैजसवर्गणा ७- अग्राह्य तैजसवर्गणा ८-ग्राह्य भाषावर्गणा ९- अग्राह्यभाषावर्गणा १०- ग्राह्यमनो वर्गणा ११- अग्राह्य मनोवर्गणा १२- कार्माणवर्गणा १३- ध्रुववर्गणा १४- सान्तरनिरन्तर वर्गणा १५- शून्य वर्गणा १६- प्रत्येक शरीर वर्गणा १७- ध्रुवशून्य वर्गणा १८- बादर निगोद वर्गणा १९- शून्य वर्गणा २० सूक्ष्म निगोद वर्गणा २१- नभोवर्गणा २२ महास्कंधवर्गणा

सूत्र-बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसपर्याप्तापर्याप्ताजीवसमासा:।२

अर्थ– जीव-समास उन अनेक पदार्थों के संग्रह करने वाले धर्मों का नाम है कि जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति का ग्रहण होता है। जीव समासों के कई प्रकार से कई प्रकार के भेद होते हैं। यहां इस सूत्र में उसके बाईस भेदों को गिनाया गया है। नाम उन भेदों के अलग अलग इस प्रकार हैं:-

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त नामक जीवसमास (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामों के साथ भी नामक जीवसमास' पद जोड़ देना चाहिये) (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३) सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४) सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५)बादर अप (जल)पर्याप्त (६)बादर अप अपर्याप्त (७)सूक्ष्म अप पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त १०- बादर तेज अपर्याप्त ११- सूक्ष्म तेज पर्याप्त १२- सूक्ष्म तेज अपर्याप्त १३- बादर वायु -हवा- पर्याप्त १४- बादर वायु अपर्याप्त १५- सूक्ष्म वायु पर्याप्त १६- सूक्ष्म वायु अपर्याप्त १७- बादर वनस्पति (वृक्षादि) पर्याप्त- १८- बादर वनस्पति अपर्याप्त १९- सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त २०- सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त-२१ त्रस पर्याप्त २२-त्रसअपर्याप्त।

सूत्र- मिथ्यात्वानन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमान

मायालोभभयजुगुप्साहा-स्यरतिपुंवेदै-र्द्वामोहनीयद्वाविंशतिकर्यंधस्था नप्रकृतय: ।३॥

अर्थ- बाईस प्रकृति वाले मोहनीयकर्म के बंधस्थान की बाइस प्रकृतियाँ होती हैं। उनके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं:-

१- मिथ्यात्व नामक मोहनीयबंधस्थान प्रकृति (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले प्रत्येक नाम के साथ नामक मोहनीय बंधस्थान प्रकृति' जोड़ते जाना चाहिये) २- अनन्तानुबंधी क्रोध ३- अनन्तानु बंधी मान ४ अनन्तानु बंधी माया ५ अनन्तानु बंधी लोभ ६ अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध ७ अप्रत्याख्यानावरणी मान ८- अप्रत्याख्यानावरणी माया ९- अप्रत्याख्यानावरणी लोभ १०- प्रत्याख्यानावरणी क्रोध ११- प्रत्याख्यानावरणी मान १२- प्रत्याख्यानावरणी माया १३- प्रत्याख्यानावरणी लोभ १४- संज्वलन क्रोध १५- संज्वलन मान १६- संज्वलन माया १७- संज्वलन लोभ १८- भय १९- जुगुप्सा २०- हास्य २१- रति २२- पुंवेद ।

सूत्र—हास्यरतिस्त्रीवेदैःसह च॥४॥

अर्थः- बाईस प्रकृतिक मोहनीयकर्म के बंधस्थान की बाईस प्रकृतियाँ अन्य प्रकार से भी हो सकती हैं। अनेक प्रकारों में से एक प्रकार इस सूत्र में उल्लिखित हैं

नाम प्रकृतियां के इसप्रकार हैं:-

पूर्व सूत्र में उल्लिखित बाईस प्रकृतियोंमेंसे प्रारंभ से लेकर उन्नीस (१९) प्रकृतियां तो वेही की वेही तथा अंतिम प्रकृतियोंके स्थानपर क्रम से (१) हास्य २- रति और ३- स्त्रीवेद को जोड दिया जाय। इस प्रकार बाईस प्रकृतियां हो जाती हैं।

सूत्र— हास्यरतिनपुंसकवेदैःसह च ॥५॥

अर्थ— इस सूत्रमें भी बाईस प्रकृतिक मोहनीय कर्म के बंधस्थान की प्रकृतियों को गिनाया गया है और सुझाया गया है कि इस प्रकार से भी बाईस प्रकृतियाँ हो हो जाती है। नाम प्रकृतियों के इस प्रकार हैं:-

सूत्र नं० तीन में गिनाई गई अनन्तानु बंधादि चार कषायों के क्रोधमानमायालोभरूप चार चार भेद होने से सोलह प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व, भय, जुगुप्सा रूप उन्नीस प्रकृतियाँ तथा अंतिम तीन प्रकृतियों के स्थान पर क्रम से हास्य, रति और नपुंसक वेद नामक प्रकृतियों के जोड़ देने से बाईस प्रकृतियां हो जाती हैं। यह भी एक प्रकार है।

सू०— अरतिशोक पुंवेदैःसह च ॥६॥

अर्थः— सिलसिला- बाईस प्रकृतिक मोहनीय कर्म के बंधस्थानकी प्रकृतियों का है। इस सूत्र में चौथा तरीका

बतलाया जा रहा है। इस तरीके से निम्नलिखित बाईस प्रकृतियाँ इस बंधस्थान में होगी:-

पूर्व सूत्र में गिनाई गई, बाईस प्रकृतियों में से शुरू की उन्नीस प्रकृतियां तथा अंतिम तीन प्रकृतियों की जगह पर क्रम से अरति, शोक और पुंवेद रखदेने से बाईस प्रकृतियाँ बन जाती हैं। ये मोहनीय बंधस्थान की प्रकृतियां कहलाती हैं।

सूत्रः- अरतिशोकस्त्रीवेदैःसह च ॥७॥

अर्थ- जो प्रकृतियां पूर्व सूत्र में बाईस प्रकृतिक मोहनीय कर्म के बंधस्थान की प्रकृतियों के रूप में गिनाई गई हैं। उनमें से शुरू की उन्नीस प्रकृतियों में कोई हेर फेर न किया जाय वे ज्यों की त्यों बनी रहें और अंतिम तीन प्रकृतियों के स्थान पर क्रम से अरति, शोक, और स्त्री वेद कर दिया जाय, तो इस प्रकार से भी इस बंधस्थान की प्रकृतियां बन जाती या हो जाती हैं।

सूत्रः— अरतिशोक नपुंसकवेदैःसह च॥८॥

अर्थ- अंतिम और छटवा प्रकार, मोहनीय कर्म के बंधस्थान की बाईस प्रकृतियों संबंधी, इस सूत्र में व्यक्त किया गया है। बाईस प्रकृतियों को इस तरह सम्हाला या गिना जा सकता है:-

पूर्व सूत्र (सूत्र नं० ३) में गिनाई गई बाईस प्रकृतियों

में से शुरु की उन्नीस प्रकृतियों को वे हीकी वे ही और अंतिम तीन प्रकृतियों के स्थान पर अरति, शोक, और नपुंसक वेद को जोड़ लिया जाय तो इस बंधस्थान की ये बाईस प्रकृतियाँ हो जाती हैं।

सू.— सम्यक्प्रकृतिरप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमाया लोभाहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदा मोहनीय षष्ठ-सत्वस्थानप्रकृतयः ॥६॥

अर्थ- मोहनीयकर्मके छटवें सत्वस्थान की, जो कि बाईस प्रकृतिवाला है, बाईस प्रकृतियाँ अलग अलग इस प्रकार हैः–

(१) सम्यक प्रकृति नामक मोहनीय सत्वस्थान प्रकृति (आगे के नामों में भी नामक मोहनीय सत्वस्थान प्रकृति पद जोड़ते जाना चाहिये) (२) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध (३) अप्रत्याख्यानावरण मान (४) अप्रत्याख्यानावरण माया (५) अप्रत्याख्यानावरण लोभ ६- प्रत्याख्यानावरण क्रोध ७- प्रत्याख्यानावरण मान ८- प्रत्याख्यानावरण माया ९- प्रत्याख्यानावरण लोभ १०- संज्वलन क्रोध ११- संज्वलन मान १२- संज्वलन माया १३- संज्वलन लोभ १४- हास्य १५- रति १६ अरति १७- शोक १८- भय १९- जुगुप्सा २०- पुंवेद २१- स्त्रीवेद २२- नपुंसकवेद ।

सूत्र:— प्रज्ञाज्ञानादर्शननाग्न्यारतिस्त्रीनिपद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारालाभक्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलपरीपहानांजयाःपरीपहजयाः।१०।

अर्थ- परीपह का अर्थ, कष्ट, बाधा या उपसर्ग है जो आकस्मिक रूप से उत्तम व्रतधारियों यदाकदा प्राप्त हो जाता है तथा भूख प्यास रूप आदि कष्ट होने पर जो उस कष्ट को शांति परिणामों के साथ सहन कर लेना परीपहजय कहलाता है। बाईस प्रकार के चूंकि परीपह होते हैं अतः उनके जय [परीपह-जय] भी बाईस तरह के होते हैं। इन परीपहों के सहन से मुनी अपने मार्ग से डिगता नहीं है और चूंकि शांति सहित उन बाधाओं को सहन करता हुआ विजय प्राप्त करता है अतः कर्मों की निर्जरा भी करता है। विपत्ति के समय मन चूंकि अस्थिर या चलायमान नहीं होता है अतः अपनी आत्मसाधना में लगा रहता हुआ साधु उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जाता है। परीपह जय के बाईस भेद इस प्रकार हैं:—

१-प्रज्ञा परीपह जय २-अज्ञान परीपह जय ३-अदर्शन परीपह जय ४ नाग्न्य परीपह जय ५ अरति परीपह जय ६ स्त्री परीपह जय ७ निपद्या परीपह- जय ८ आक्रोश परीपह जय ९ याचना परीपह जय १० सत्कार-पुरस्कार

परीषह जय ११ अलाभ परीषह जय १२ क्षुधा परीषह जय १३- पिपासा परीषह जय १४- शीत परीषह जय १५- उष्ण परीषह जय १६ दंशमशक परीषह जय १७ चर्या- परीषह जय १८- शय्या परीषह जय १९- वध परीषह जय २०- रोग परीषह जय २१- तृणस्पर्श परीषह जय २२- मल परीषह जय।

१ प्रज्ञा परीषह जयः- निर्ग्रन्थ लिंग के धारक मुनि ग्यारह चौदह पूर्व आदि बहु श्रुतके ज्ञानी हैं शब्द शास्त्र, न्याय शास्त्र, अध्यात्म शास्त्रादि पर अच्छा अधिकार है, इनके पांडित्यके सामने दूसरे जनोंका पांडित्य वैसा ही हीनवमदा जंचता है जैसे कि सूर्य के प्रकाश के सामने जुगुनु का प्रकाश, ऐसे पांडित्यसे युक्त होते हुए भी सरलतर गर्व का परित्याग करना अपने मन में गर्व का परिणामों को पैदा नहीं होने देना प्रज्ञा परीषह जय कहलाता है।

२-अज्ञान परीषह जय:- ज्ञानावरणी कर्म के उपशम, क्षय या क्षयोपशम न होने से साधु बड़ी तत्परता और लगन से ज्ञानाराधन के लिये प्रयत्न करता है, कि सफलता नहीं मिलती है और दूसरे जन तिरस्कार करते हैं, कहते हैं' ये मूर्ख है पशु के समान है, कुछ नहीं जानता है फिर भी जो इन ... को शांति के करते हुए, खिन्न न होते हुए ध्यान की

रहना है सो अज्ञान परीषह जय कहलाता है।

(३) अदर्शन परीषह जयः– "हृदय में परम वैराग्य को लिए हुए परिणाम बने हुए हैं, मन में किसी भी तरह के मल या दोषों को स्थान नहीं दिया है सर्वज्ञ जो अरहंत देव, उनके आयतन, एवं साधू धर्म के प्रति सदा ही पूज्य भाव रक्खा है और एक बहुत लम्बे अरसे से (समय से) दैगम्बरी दीक्षाको धारण कर रक्खा है फिर भी मुझे (साधू को) आज तक कोई ज्ञान का अतिशय प्राप्त नहीं हुआ, क्या बात है ? अरे, जितने बडे २ लम्बे समय तक उपवास किये थे उनको प्रातिहार्य विशेष की प्राप्ति हुई थी, पंचाश्चर्य प्रगटे थे, यह सब व्यर्थ है, बकवास मात्र है, दीक्षा धारणकरना , व्रतों का पालना निरर्थक और निष्प्रयोजन है" इस प्रकारके श्रद्धानसे च्युत होने के निमित्त प्राप्त होने पर भी मुनिमार्ग से डिगना नहीं, उसमें अपनी आस्था बनाये रखते हुए पूरी लगन के साथ अपने धर्म का पालन करना,दर्शन विशुद्ध्यादि परिणामों में मलिनता न लाते हुए दृढ़ता बनाये रखना अदर्शनपरीषह जय कहलाता है।

(४) नाग्न्यपरीषहजयः– याचना, रक्षण, हिंसन आदि दोषों से रहित, माता के गर्भ से उत्पन्न हुए बालक की तरह नग्न रूप के कारण बिना निर्वाण पथ पर पैर

नहीं बढ़ाया जा सकता है। निष्परिग्रहता से ही मुक्ति मिलती है, ऐसा विचार नग्नताको अपना कर चर्या करना, मनमें कामके विकार न पैदा होने देना, स्त्री रूपके प्रति अशुचिता एवं घृणाके भाव को पैदा करते हुए अखण्ड ब्रह्मचर्यके पालनमें लगे रहना नाग्न्य परीषह जय कहलाता है। इस परीषह को जीतने वाला अपने दर्शनज्ञानादि स्वरूप की ओर दृष्टि लगाता है।

५- अरति परीषह जयः- इस परीषह को वही साधु जीत पाता है जो संयमके प्रति दत्तचित्त होता हुआ इन्द्रिय विषय भोगों के प्रति उत्कंठा व्यक्त नहीं करता, उनसे उदासीन रहता है। वह गीत नृत्य वादित्रादि कामोत्तेजक साधनों से रहित सूनेघरों में, देवालय के खंडरों में, वृक्षोंके खोखलोंमें, पर्वतों की गुफाओं आदि में रहते हुए स्व स्वरूप चिन्तवन रूप स्वाध्याय, ध्यान आदि की भावना में लगा रहता है। पहिले देखे हुये, सुने हुए और अनुभूत हुए रति विषयक बातों को न तो स्मरण करता है, न उनकी कथा को सुनता है और इस तरह काम के बाणों को अपने हृदय में प्रविष्ट नहीं होने देता अरति परीषह जयी साधू सम्पूर्ण जीवों पर दया भाव रखता है।

६- स्त्री परीषह जयः- एकान्त स्थान जैसे

उपवन, वाटिका, वसतिकादि में ध्यान करते हुए नवयौवन से मदोन्मत्त युवतियों के विलास से भरे हुये भावों के होने पर व उनके द्वारा काम सेवनादि के लिये उत्तेजना पैदा करना रूप बाधाओं के होने पर अपने आपकी इन्द्रियों को जो साधू इस प्रकार संकुचित कर लेता है जैसे कि कछुआ। कछुआ अपने आगोपाङ्गों को भीतर संकोच लेता है, वे बाहर बिलकुल भी नहीं दिखाई देते। इतना ही नहीं, किन्तु साथ ही साथ में कमनीय कमनियों के मंद मुस्कानों कोमल वचनालापों, तिरछी निगाहों, बंकी चितवनों, हसते हुए मस्ती भरी चालों आदि काम के विकारों को भी वह पूर्णतया निष्फल कर देता है। इस प्रकार साधू स्त्री परीषहपर जय प्राप्त करते हैं।

(७) निषद्या परीषह जयः– श्मशानों, उद्यानों, सूनेघरों पर्वत की गुफाओं, कन्दराओं आदि में रहते हुए वहाके स्थानको, भली तरह से सूर्यकी किरणों के प्रकाश से, और अपनी इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञानके प्रकाश से, देखकर उसमें समय की सीमा करके आसन मांड कर बैठना, ध्यान करना, वज्रासन, वीरासन, गोदूहन, उत्कुटिकादि आसनों को लगाकर बैठे रहना निषद्या परीषह जय कहलाता है। ऐसी अवस्था में साधू केहरी, व्याघ्र आदि की गर्जनाओं, हाथियों की चिंघाड़ों की आवाजों

निर्भय होकर सुनता रहता है, उन पशुओं आदि संबंधी उपसर्गों को सहन करता हुआ मोक्षके मार्गसे विचलित नहीं होता है।

(८) आक्रोश परीषह जयः— मिथ्यात्वरूपी मद से मदोन्मत्त उद्दण्ड व्यक्तियोंके ऐसे असभ्य, कठोर, निन्दासेभरे वचनोंको, जिनके द्वारा क्रोधाग्निकी ज्वालाएं सहज में ही भभक उठ सकती हैं, सुनते रहते हुए भी साधू के द्वारा जिनके प्रति कोई ध्यान नही दिया जाता है, उनको हृदयमें स्थान न देते हुए उपेक्षणीय समझाजाता है, तभी कहा जाता है कि साधु आक्रोश परीषह जय में प्रयत्न शील है। ऐसी प्रकृतिवाला, डर के मारे या शक्ति हीनता के कारण चुप या शान्त रहता हो सो बात नहीं हैं। उसमें उन आक्रोश व निन्द्य वचनों की प्रतिक्रिया करने को सामर्थ्य भी रहती है फिर भी अपने पापकर्मके विपाकका ख्याल करते हुए, उनको सुनते हुए, अपनी प्रवृत्तिको तपश्चरण की ओर और ज्यादा लगाता है, और आत्मामें कषायके लवको भी पैदा नहीं होने देता है।

(९) याचना परीषह जयः— साधु अपने पद में स्थित होता हुआ प्रायश्चित्तादि छह अंतरंग तपों एवं अनशन अवमौदर्यादि छह बाह्य तपों का आचरण करता

है, तपों में तत्परता एवं लगन के कारण वह अपने शरीर को वैसा ही निःसार बना लेता है जैसा कि प्रचण्ड सूर्य की प्रखर रश्मियों से पीन (पोलिया गया है) सार (सरस भाग जिसका) छाया रहित शुष्क वृक्ष होता है। उसके मात्र ऊपरकी चमड़ीका चादर, हड्डियों और नसाजालके अतिरिक्त शरीरयंत्र में कुछ नहीं बाकी रहता है। ऐसी स्थिति होते हुए भी मुख पर किसी हीनता, विवर्णतादिके विकारोंको न लाते हुए जो चर्या को निकालता है और योग 'मिल जाने पर ही आहार ग्रहण करता है, वही परम तपस्वी साधु याचना परीषह जयी कहलाता है। उसे प्राण दे देना ज्यादा श्रेयस्कर प्रतीत होता है किन्तु अपने पद से विचलित होना अस्वीकार्य होता है। वह आहार, वसतिका, दवाई आदि के लिये दीन जैसा होता हुआ कभी भी याचना नहीं करता।

(१०) सत्कारपुरस्कार परीषह जय– सत्कार का अर्थ है सम्मान, पूजा, प्रशंसादि करना। पुरस्कार से प्रयोजन है किसी क्रिया के आरंभ करने में आगे करना, बुलाना साधु सत्कारपुरस्कारादि से कोई प्रयोजन नहीं रखता, वह सन्मान में सम बुद्धि रखते हुए आदर सन्मान न मिलने कभी भी खेद खिन्न नहीं होता। वह कभी

भी नहीं सोचता कि "देखो, मैं कितने लम्बे समयसे ब्रह्मचर्यको पालते हुए दुद्धर तपों को तपा है, अनेकों ही बार दूसरे मतावलंवियों पर विजय प्राप्त कर स्व समय का प्रसार किया है, फिर भी ये लोग मेरा आदर सन्मानादि कुछ भी नहीं करते, अरे, मुझसे हीन चरित्र पालनेवाले मिथ्यादृष्टि जन जो कुछ भी तत्वभूत पदार्थके स्वरूपको नहीं जानते सांसारिक जनों द्वारा सर्वज्ञ के समान पूजित हो रहे हैं, सन्मान आदर प्राप्त कर रहे हैं। पहिले सुना जाता है, कि व्यन्तरादि देव अत्यन्त उग्रतपस्या करने वाले साधुओं की पूजा करते थे, यह सब झूठ है, देखो इस समय मुझ जैसे कठिन तपस्या के करने वाले साधु की पूजा व्यन्तरादिक क्यों नहीं करते' परीषहजयी साधु तो अपनी आत्मपरिणतिके स्तर को निम्नस्तरपर न लाते हुए उसे उच्च स्तर की ओर ले जाते हैं।

(११) अलाभ परीषह जयः- वायु की तरह पूर्णतया निःसंगया निष्परिग्रह होते हुए अनेक देशों में गमन करने वाला साधु भोजन का समय प्राप्त होने पर भाषा एवं वचनों पर नियंत्रण रखते हुए चर्या के लिये निकलता है। बहुत से घरों पर जाता है योग न मिलने से आहार नहीं होता, ऐसा एक दिन नहीं अनेक दिन से

होता आरहा हो और अनेक दिन तक आहार का अलाभ होता रहे तोभी जो साधु संतुष्ट रहता है। इस अलाभ को लाभ से ज्यादा लाभकारी मानता है, अलाभ को ही परम तप मानता है तो समझना चाहिये कि वह सच्चे अर्थों में अलाभ परीषह जयी है।

(१२) क्षुधा परीषह जयः– विधि एवं नवधा भक्ति सहित दोषरहित आहार की प्राप्ति हेतु चर्या द्वारा निकले हुए साधु को भोजनके न मिलनेपर या तृप्ति कारक न होते हुए मात्र थोड़ेसे भोजनकी प्राप्ति होने पर जिसकी भोजनसे इच्छाहट नहीं है और अपने आवश्यक कर्मों में दत्तचित्त हो गया है ऐसा कष्ट जयी साधु क्षुधा परीषह जयी कहलाता है। वह बहुत बार अपने द्वारा किये गये या पर के द्वारा कराये गये अनशन ऊनोदरादि के समय, निरस आहार की प्राप्ति के समय, या तपे हुए तवे पर गिरी हुई जलविन्दु के समान, क्षुधा से तप्त उदर दरी में मात्र जल विन्दु की प्राप्ति के पश्चात् आहार के अलाभ के समय भूख संबंधी वेदनाको धैर्यके साथ सहन करता है और तभी वह क्षुधा परीषह जयी सिद्ध हो पाता है।

(१३) पिपासा परीषह जयः– जलसे स्नान करने का, उसमें घुसने का और उसको अपने ऊपर छिड़कने का जिसने परित्याग करदिया है, जो पक्षियों के समान अनि-

यह आसन मे उठने बैठने वाला है, और जिसका कोई निश्त वास नहीं है ऐसा दिग्म्बर निर्ग्रंथ साधु अत्यन्त खारे, अति चिकने या अति रूखे, प्रकृति विरुद्ध आहार के सेवन से, ग्रीष्म संबंधी गर्मी से, ज्वरकी गर्मी से या उपवासादि करने अ प्रदीप्त उठी हुई पिपासा से जब पीड़ित होता है, ओठ सूकने लगते हैं, सारा शरीर प्यास के मारे ढीला पड़जाता है, साधारण जनपल पल में पानी पीकर अपनी पिपासा बुझाने में प्रयन्नशील होता है तब उसकी उसकी उपेक्षा करता हुआ परम तपस्वी साधु अपने पद के अनुकुल कर्तव्यों में लगा रहता है। वह साधु नरक पर्याय में लगने वाली प्यासके स्वरूपसे वर्तमान प्यास की तुलना कर अपने आपको संबोधित करते हुए विचारता है कि उस समुद्रों पानी के पी जाने पर भी न शान्त होने वाली पिपासा को तूने सहा है तो हे आत्मन इस जरा सी साधारण प्यास से विकलता कैसी? वह शरीर से परम निस्पृही साधु प्यास रूपी आग की लपटों पर धैर्य रूपी घड़े में शील से सुगंधित समाधि रूपी शी.ल सलिल (जल) को भर कर डालता है, उड़ेलता है और इस प्रकार प्यास का दास न बनकर वह अपने आपको उसका प्रभु सिद्ध करता है। यह कहलाता है पिपासा परीषह जय।

(१४) शीत परीषह जयः– पक्षियों के समान न

जिन का कोई निश्चित आवास (रहने का स्थान) है, न कोई ओढ़ना बिछौना रूप तिल मात्र परिग्रह है ऐसे पूज्य परम दिगम्बर साधु शीतकाल में वृक्ष के नीचे जहां ओस की बूंदे टप टप कर शरीर पर गिर रही हैं, चौपथ मार्ग स्थल में जहां चारों तरफ से तीर के समान चुभने वाली ठंडी हवा लग रही है और कभी पर्वतशिखरों पर जहां अत्यन्त ठंड पड़ रही है, जाकर ध्यान करते हैं, हाड़ों को भी कंपा देने वाली जोर की ठंड पड़ती है फिर भी उसकी ओर जरा भी ख्याल न देते हुए ज्ञान रूपी तल घर में बैठे शांति पूर्वक निवास करते रहते हैं। ऐसी ही वृत्ति से साधु शीत परीषह जयी होता है।

(१५)उष्ण परीषह जयः— मुनिमार्ग पर गमन करते हुए साधु को उष्ण (गर्मी संबंधी) परीषह सहने का भी अभ्यासी होना पड़ता है। जल और वायुसे रहित जंगलमें भयानक अटवीका क्षेत्र है, सूर्य प्रखर रश्मियों से आग बरसा रहा है, गर्मी का मौसम है, वृक्षों के ऊपर लगे हुए पत्ते सूखकर गिर गये हैं ऐसे दो पहर के समय जब सभी प्राणी गर्मी से विकल हो छाया में पंखों के नीचे, तलघरों में खस की टट्टी लगा बैठे हुए हैं फिर भी गर्मी के मारे तडफड़ा रहे हैं लेकिन योगीराज पर्वत शिखर की शिला पर बैठे आतापन योगकी आराधना

करते हैं । उनके अंतरंगमें अकस्मातरूपसे होगये उपवासों की गर्मी पाई जा रही है, गला और तालु सूख रहा है, जंगल में दावानल प्रज्वलित हो रहा है फिर भी अपने धारण किये हुए योग से जरा भी जो विचलित न होते हुए शांति पूर्वक कष्टों को सहन करते हैं, आ-पत्तियों को झेलते हैं ऐसे साधु उष्ण परीषह जयी कहलाते हैं।

(१६)दंश मशक परीषह जय –साधु, डांस, मच्छर, मक्खी, पिस्सू, चिंटी खटमल. कीड़े मकोड़े, विच्छू आदि जीव जन्तुओं से होने वाली बाधाओं को शांति के साथ साधु सहन करता है। उनके काटने पर भी जो परिणामों निकलता नहीं लाता और अंतिम ध्येय रूप निर्वाण प्राप्त में अपने आपको लगाये रखता है वह साधु दंशमशक परीषह जयी कहलाता है। (चर्या परीषह का स्वरूप पार्श्व पृष्ठ पर है)

(१७)चर्या परीषह जयः– जिसके द्वारा बहुत समय तक गुरु के समीप रहकर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने का अभ्यास करलिया गया है साथ ही में सप्त तत्वों के स्वरूप को भी भली भांति जिसने अवगत कर लिया है ऐसा साधु संयम के साधन भूत देवायतनों की भक्ति के लिये, गुरु से आज्ञा प्राप्त कर पवन की तरह एकाकी होता हुआ, कंकर, पत्थर, कांटों से भरे हुए बनके

वीहण व भयानक मार्गोंमेंसे गमन करना है। पत्थरों की ठेस पहुँचती या लगती है' कांटे चुभते हैं ऊंचे स्थानों में चलने से पीड़ा होती है फिर भी पूर्व में (पहिले) भोगे गये वाहनादिक सुखका जरा भी चिन्तवन न करते हुए बड़ी शांति के साथ वह अपनी चर्या में लगा रहता है। यद्यपि अनेकों वार अनशन, ऊनोदर आदि तपों के अनुष्ठानसे शरीर निर्बल हो गया है, फिर भी संयममें पूर्ण सावधानी रखता ईर्या समितिका पालन करता हुआ साधु अपने आ-वश्यकों को भी यथा काल करता हुआ, चर्या में प्रयत्न शील होता रहता है। यही कहलाता है साधु का चर्या परीषह जय। इससे शरीर के प्रति निर्ममत्व भावों में वृद्धि होती है।

(१८) शय्यापरीषह जयः— स्वाध्याय ध्यान या गमनादि क्रिया से होने वाले श्रम (थकावट) को दूर के लिये ऊची नीची कठोर पाषाण और वालु से युक्त भूमी पर निद्रा का सेवन करने वाला साधु जैसा उसने करवट लिया है उसी करवट को लिये हुए सूखे ठूंठ (लकड़ी) के समान या मुर्दे के समान पड़ा रह ता है वह ऐसा ख्याल करते हुए कि मेरे करवट वगैरह के बदलने से जीवों की पीड़ा या बाधा होगी

(१९) वध परीषह जयः—ध्यान में, सामायिक में या समाधि में बैठे हुए योगिराज के शरीर पर तीक्ष्ण फरसे आरियां, मुद्गर आदि से आक्रमण किया जाता है, ताड़ना की जाती है और वह मरणासन्न भी हो जाता है किन्तु धन्य है उन क्षमा शील योगिराज को कि वे जरा भी आक्रमण करते या मारने वाले व्यक्ति के प्रति मन में विकार नहीं लाते, अपने मुख पर क्रोधके भावोंको पैदा नहीं होने देते हैं। वे तो अपने मनमें सोचते है कि मैंने पूर्व जन्म में कुछ खोटे कर्म किये थे उनके फलों को भोग कर निर्जरा कर रहा हू। विचारे इन आक्रमण करने वालों का क्या दोष, वे करभी क्या सकते हैं, मेरा यह शरीर जलके बल बूले के समान विनाशीक है, अनेक कष्टों का प्रदान करने वाला है सो इसी को कुछ बाधा पहुँचा सकते हैं। मेरा स्वरूप जो ज्ञान दर्शन चारित्रमय है अखंड है अविनाश स्वरूप है उसे कोई कैसे नष्ट नहीं कर सकता इस तरह तीक्ष्ण शरों के आघातों एवं सुवासित चन्दन के लेपोंके प्रति एकसा निर्ममत्व परिणाम रखते हुए साधु वधपरीषह जय में सफल प्रयत्न होता है और आत्म साधना में अधिक दृढ़ता पैदा करता है

(२०) रोग परीषह जयः—यह शरीर समस्त अपवित्रताओं का भंडार है, अनित्य है, अतः अरक्षणीय है

ऐसे निर्ममत्व परिणामों से युक्त होता हुआ साधु शरीर में उत्पन्न होने वाली अनेक व्याधियों के प्रति उदासीन रहता है यद्यपि साधु के जल्लौषधि आदि विक्रिया ऋद्धियाँ पाई जाती हैं, वह उनके माहात्म्य से रोगों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है फिर भी, शरीर के प्रति राग भाव न होने से, वह उनका प्रतिकार नहीं करता है और शांतिभाव से रोग प्राप्ति को निर्जरा का कारण मान, उन्हें सहन करता रहता है।

(२१) तृणस्पर्श परीषह जयः- चर्या, शय्या, निषद्यादि (चलना, सोना, बैठना आदि) क्रियाओं के करते समय या अन्य पद के अनुरूप कर्त्तव्य कामों को करते हुए सूखे तीखे तिनकों, नुकीले पत्थरों, कांटों, कंकड़ों आदि से वेदना होता है चोट लग जाय तो उसकी ओर कोई ध्यान न देते हुए वे अपने नित्य नैमित्तक कर्मों में शिथिलता नहीं लाते हैं। साधु पुरुष अपनी चर्या शय्यादि क्रियाओं में और ज्यादा सावधानी तथा दृढ़ता से प्रवृत्ति करता है। इसी को तृणस्पर्श परीषह जय कहते हैं।

(२२) मल परीषह जयः- जलकायके जीवों का व्यर्थमें ही मेरे द्वारा पीड़ा न पहुंचे, उनका घात न हो अतः जो मरण पर्यन्त अस्नान (स्नान नहीं करना,

नहाता नहीं) रूप व्रत को पालते हैं, प्रचण्ड मार्तण्ड के चण्ड प्रताप से उत्पन्न हुए पसीने के कारण धूल कण जिसके शरीर पर जम कर इकट्ठे होगया हो तथा जिसके कांखों आदि मल स्थानों में छोटे २ जूं, पिस्सू पैदा होकर खुजाल पैदा कर रहे हों ऐसा साधु बाह्य मल के प्रति उपेक्षा करता हुआ अंतरंग में पाये जाने वाले राग द्वेषादि मलों से इनकी तुलना करता है और शरीर को मीड़ता मरोड़ता या खुजलाता नहीं है। वह तो अपने अंतरंग में पाये जाने वाले ज्ञानावरणादि कर्म मलों से युक्त पापपंक को शुद्ध ज्ञानचारित्रादिरूप समीचीन शीतल सलिल (जल) से धोने के लिये प्रयत्न करता है। इस प्रकार खुजाना, शरीर मीड़ना रगड़ना आदि क्रियाओं को न करता हुआ बिना किसी उद्वेग या आकुलता के मल परीषह को जीतने में लगता है। सहन करता है। उन पर अपने साम्यभावों से विजय प्राप्त करता है।

इस विवेचन को समाप्त करने के पूर्व इस जिज्ञासा का उत्तर दे देना कर्तव्य समझते हैं कि सूत्र का क्रम इस प्रकार क्यों रक्खा। अन्य ग्रन्थों में क्षुत्पिपासा शीतोष्णादि रूप से सूत्र लिखा गया है जबकि यहां प्रज्ञाज्ञाना दर्शनादि रूप से प्रारम्भ किया गया है। बाईस परीषहों में पहिले ग्यारह परीषह वे गिनाये गये हैं जिनमें से कुछ

को (८ परीपहों) ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में अभाव हो जाता है और बाकी तीन का तेरहवें गुणस्थान में जाकर अभाव हो जाता है। फिर भी क्षुत्पिपासादि शब्द में जो ग्यारह परीपह गिनाये गये हैं वे उपचार से तेरहवें गुणस्थान वर्ती जिन,के भ. पाये जाते हैं अतः आखिर तक (मुक्तिप्राप्ति के पूर्व) पाये जाने वाले परीपहों को आखीर में रक्खा है।

इस जिज्ञासा का समाधान इस तरह से भी किया जा सकता है कि पहिले घातिया कर्मों के निमित्तसे होने वाले परीपह गिना दिये फिर अघातियाकर्मों के निमित्तसे होने वाला बतला दिया। इसीलिये पहिले ज्ञानावरणी कर्म के निमित्त से होने वाले प्रज्ञा और अज्ञान परीपह को बतलाया, दर्शन मोह से होने वाले अदर्शन को गिनाया, चारित्र मोहनीयके निमित्तसे हो ा नाग्न्यअरति, स्त्री, निषद्य, आक्रोश, याचना, सत्कार–पुरस्कार रूप सात परीपहोंको रक्खा और अंतरायके निमित्त से होने वाले अलाभपरीपह को गिना घातिया कर्म के क्रम, को समाप्त कर दिया अंत में अघातिया कर्म वेदनीय के निमित्त से होने वाले ग्यारह परीपहों को गिना सूत्र समाप्त कर दिया गया है।

सूत्रः— मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानावरणानिचक्षुरचक्षुरवधिकेवलद

र्शनावरणनिसातासंज्वलनक्रोधमानमायालोभपुंवेदायशःकीर्तिरूच चैर्गोत्रदानलाभभोगोपभोगवीर्यान्त रायाअनिवृत्तिकरणेबंधयोग्याःप्रकृतय॥११॥

अर्थः- अनिवृत्तिकरण नामक नवमें गुणस्थान में बंध के योग्य बाईस प्रकृतियाँ होती हैं। प्रकृतियों के नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:-

१- मतिज्ञानावरण २- श्रुतज्ञानावरण ३- अवधिज्ञानावरण ४- मनःपर्ययज्ञानावरण ५- केवलज्ञानावरण ६- चक्षुदर्शनावरण ७- अचक्षुदर्शनावरण (८) अवधिदर्शनावरण (९) केवलदर्शनावरण (१०) साता वेदनीय (११) संज्वलन संबंधी क्रोध (१२) संज्वलन मान (१३) संज्वलन माया (१४) संज्वलन लोभ (१५) पुंवेद (१६) यशकीर्ति नामक नाम कर्म प्रकृति (१७) उच्च गोत्र (१८) दानान्तराय (१९) लाभान्तराय (२०) भोगान्तराय (२१) उपभोगान्तराय (२२) वीर्यान्तराय

सूत्र— संज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सापुंस्त्री नपुंसकवेदाःसत्यासत्योभयानुभयमनोयोगसत्यासत्योभयानुभय वचनयोगौदारिककाययोगाअप्रमत्तविरतेआश्रवाः॥१२॥

अर्थ- अप्रमतविरत नामक सातवें गुणस्थान में आगे लिखे जाने वाले बाईसनिमित्तोंसे कर्मोंका आश्रव (आना) होता है। बाईस आश्रवद्वारों के नाम ये हैं:-

स र्व सा धु भ्यो न मः ।

सूत्रः— ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्योबुद्धेभ्यःसर्वसिद्धिदायकेभ्योनमःस्वाहाइति द्वाविंशत्यक्षरविद्यामंत्र ॥१६॥

अर्थ– यह भी बाईस अक्षर वाला एक मंत्र हैं। इस मंत्र को विद्या मंत्र के रूप में उपयोग में लाते हैं। मंत्र के बाईस अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:–
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सि द्धे भ्यो बु द्धे भ्यः स र्व सि द्धि दा य के भ्यो न मः स्वाहा ।

सूत्रः— ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमतिनिवारिण्यैमहामायायैनमःस्वाहाऽऽह्वनीयेच्छापूरकः॥१७॥

अर्थ– जो व्यक्ति वस्तु बुलाने योग्य होती है उसे आह्वनीय कहते हैं. तद्विषयक इच्छा को पूरा करने वाला यह मंत्र है। इसके भी बाईस अक्षर हैं उन बाईस अक्षरों को अलग अलग इस प्रकार लिखा जा सकता है:–
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कु मति नि वा रि ण्यै म हा मा या यै न मः स्वा हा

सूत्रः—प्रतिज्ञाहानिप्रतिज्ञान्तरप्रतिज्ञाविरोधप्रतिज्ञासंन्यासहेत्वन्तरार्थान्तर निरर्थकाविज्ञातार्थापार्थकाप्राप्तकालार्थपुनरुक्ताननुभाषणाज्ञाना प्रतिभापर्यनुयोज्योपेक्षणनिनुयोज्यानुयोगविक्षेपमतानुज्ञान्यूनाधिकाप सिद्धान्तहेत्वाभासानिग्रहस्थानविशेषाः॥१८॥

अर्थ– इस सूत्र में निग्रह स्थानों के बाईस भेद गिनाये गये हैं। इसके पहिले कि भेदों के अलग अलग

नाम लिखे जाँय अच्छा हो संक्षेप में निग्रहस्थान की परिभाषा जानली जाय। न्यायसूत्र नामक ग्रंथ में लक्षण लिखते हुए इस प्रकार सूत्र लिखा है "विप्रतिपत्ति-रप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम "
विरुद्ध अथवा कुत्सित जो ज्ञान होता है उसे विप्रतिपत्ति तथा तत्वप्रतिपत्ति (ज्ञान) के अभाव को अप्रतिपत्ति कहते हैं। इसी विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्ति को निग्रह स्थान कहते हैं। इसी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए न्याय कलिका के पृष्ट नं २८ पर लिखा है:-
"निग्रहः पराजयः तस्य स्थानं आश्रयः कारणं निग्रह स्थानम्।"
निग्रह पराजय को कहते हैं तथा उसका जो, स्थान आश्रय या कारण हो उसे निग्रह स्थान कहते हैं। ऐसे निग्रह स्थानके बाईस प्रकार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:-

(१) प्रतिज्ञाहानि नामक निग्रह स्थान (इसी तरह आगे लिखे जाने वाले प्रत्येक नाम के साथ नामक निग्रह स्थान पद जोड़लेना चाहिये) (२) प्रतिज्ञान्तर (३) प्रतिज्ञाविरोध (४) प्रतिज्ञा सन्यास (५) हेत्वन्तर (६) अर्थान्तर (७) निरर्थक (८) अविज्ञानार्थ (९) अपार्थक (१०) अप्राप्तकालार्थ (११) पुनरुक्त (१२) अननुभाषण १३-

अज्ञान १४- अप्रतिमा १५- पर्यनुयोज्योपेक्षण १६- निरनुयोज्यानुयोग १७- विक्षेप १८- मतानुज्ञा १६- न्यून २०- अधिक २१- अपसिद्धान्त २२- हेत्वाभास

।१। प्रतिज्ञा हानि नामक निग्रहस्थानः- वाद विवाद के समय वादी ने अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिये कोई हेतु सामने रक्खा या दिया। प्रतिवादी ने उसमें कोई दूषण बतला दिया। तीसरी बार जब वादी उत्तर देने को समुद्यत होते हुए प्रतिवादी के द्वारा दिखलाये गये दृष्टान्त धर्मों का अपने दृष्टान्त में आरोप कर लेता है तब उस समय उसकी (वादी की) प्रतिज्ञा नष्ट हो जाती है, इसी को प्रतिज्ञाहानि नामक निग्रह स्थान कहते हैं। न्याय सूत्र का सूत्र भी इसका लक्षण इस प्रकार करता है- " प्रतिदृष्टान्त धर्मानुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञा हानिः " अपने द्वारा प्रदत्त दृष्टान्त में प्रतिवादी के दृष्टान्त धर्मों को स्वीकार कर लेना या मान लेना प्रतिज्ञा हानि है जैसे वादी ने अपने पक्ष के समर्थन को लक्ष्य में रखते हुए एक प्रतिज्ञात्मक वाक्य कहा शब्द अनित्य है कारण कि वह ऐन्द्रियक है जो २ ऐन्द्रियक होते हैं वे २ अनित्य होते हैं, जैसे घट " इसमें शब्द के अनित्य होने की प्रतिज्ञा की। प्रतिज्ञावादी ने दूषण देते हुए अपनी युक्ति सामने रखदी, उसने कहा कि

ऐन्द्रियक हेतु व्यभिचारी है, " सामान्य „ ऐन्द्रियक होता है किन्तु वह अनित्य न होते हुए नित्य होता है अतः ऐन्द्रियक हेतु नित्यत्व की भी सिद्धि करता है। ऐसा कहने पर वादी कहता है कि यदि ऐसा है तो घट नामक पदार्थ भी सामान्य के समान नित्य होवें हमें कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार वादी स्वयं की जो प्रतिज्ञा शब्द के अनित्यत्व सिद्ध करने की थी उसे छोड़ नित्यत्व को सिद्ध करने में लगाया, यही प्रतिज्ञा हानि निग्रह-स्थान कहलाता है। २– प्रतिज्ञान्तर नामक निग्रह स्थानः– प्रतिज्ञात अर्थ के हेतु को दूषण दिखलाकर जब खंडन किया गया तो उसका खंडन न करते हुए अन्य ही धर्म विकल्पों को करके एक दूसरी ही प्रतिज्ञा द्वारा प्रतिवादी की युक्ति के निग्रह करने की वादी चेष्टा करता है किन्तु ऐसा करते हुए साधन के सामर्थ्य का ख्याल नहीं करता। यह प्रतिज्ञान्तर नामक निग्रहस्थान है।

[३] प्रतिज्ञाविरोध नामक निग्रहस्थान जहाँ प्रतिज्ञाका हेतुसे अथवा हेतुका प्रतिज्ञा से विरोध होता है वहां प्रतिज्ञा विरोध निग्रहस्थान होता है। जैसे "गुणों से भिन्न द्रव्य होता है [प्रतिज्ञा] कारण कि रूपादिक की भेद रूप से उपलब्धि नहीं होती है, वे अभेदरूप से पाये जाते हैं"। इसमें प्रतिज्ञा „भिन्नत्व

की सिद्धि " मे हेतु का विरोध पाया जाता है ।

(४) प्रतिज्ञासन्न्यास नामक निग्रहस्थानः- पक्ष का खंडन होने पर जिसकी प्रतिज्ञा की है उसी अर्थ को मेट जाना या छोड़ बैठना प्रतिज्ञा सन्न्यास कहलाता है। जैसे प्रतिज्ञा की कि शब्द अनित्य होता है ऐन्द्रियक होने से। इसमें सामान्य के द्वारा व्यभिचार दिया गया, तो प्रतिज्ञा को छोड़ बैठना कि" अरे कौन ऐसा कहता है कि शब्द अनित्य है ?

[५] हेत्वान्तर नामक निग्रह स्थानः- सामान्य रूप से हेतु के कहने पर और उसके खंडित या दूषित होने पर उसको दूर करने के लिये जो निरर्थक हेत्वन्तर का [हेतु विशेष का] प्रयोग करना हेत्वन्तर निग्रहस्थान कहलाता है।

(६) अर्थान्तर नामक निग्रहस्थानः- प्रकृति अर्थ से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं बैठता है, प्रदत्त दूषण का जिससे कोई खंडन नहीं होता फिर भी कथा को न छोड़ते हुए असम्बद्ध दूसरी ही बातों को कहने लग जाना अर्थान्तर निग्रहस्थान है।

(७) निरर्थक नामक निग्रहस्थानः- कहने योग्य कुछ भी न होते हुए भी केवल शब्दों को (वर्णों को) क्रम से कहने लग जाना निर्थक निग्रहस्थान कहलाता है।

जैसे शब्द अनित्य है, ज ब ग ड द होने से, घ ट ध की तरह ।

(८) अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थानः– वाद विवाद में जब दिखाई देता है कि पक्ष प्रबल नहीं है तो कुछ धूर्त छांट वादी गण अपनी असामर्थ्य को छिपाने के लिये अप्रसिद्ध प्रयोग या जल्दी व तेजी के साथ हेतु आदि का प्रयोग करने लगते हैं। जो साधन वाक्य या दूषण वाक्य तीन वार दुहराये जाने पर या कहे जाने पर भी परिषद् में बैठे व्यक्तियों और प्रति वादी को समझ में न आये, उसका मतलब ही न मालूम पडे या समझ में न आवे तो उसको अविज्ञातार्थ निग्रहस्थान कहते हैं।

(९) अपार्थक नाम निग्रहस्थानः– पूर्वापरमें जिनका कोई संबंध नहीं बैठता है ऐसे अनेकों पदों या वाक्यों का प्रयोग करना अपार्थक नामक निग्रहस्थान है। जैसे, दश दाडिम, छह पुआ, कुण्ड, अजाजिन, पलल पिण्ड आदि वाक्यसमूह । इस निग्रहस्थान को निरर्थक नामक निग्रहस्थान के अंतर्गत करदें सो भी नहीं हो सकता है कारण कि निरर्थक में वर्णमात्रों की प्रधानता रहती है इस में असम्बद्ध पद वाक्य आदि रहते हैं ।

१०- अप्राप्तकाल नामक निग्रहस्थानः– प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरणादि अवयवों का मन चाहे रूप से क्रम का

उल्लंघन करते हुए, प्रयोग करना अप्राप्त काल निग्रहस्थान कहलाता है।

११- पुनरुक्त नामक निग्रहस्थानः– ऐसे शब्द और अर्थों को, जो कहे जा चुके हों, फिर से कहना पुनरुक्त नाम का निग्रहस्थान कहलाता है। जैसे अनित्य शब्द अनित्य शब्दः" यह शब्द पुनरुक्त का उदाहरण हैं। "जो उत्पत्ति धर्मवाला है वह अनित्य है" यह अर्थ पुनरुक्त का उदाहरण है।

१२- अननुभाषण नामक निग्रहस्थानः– जिसको परिषद ने समझ लिया है और जो वादी के द्वारा तीन तीन बार दुहराया जाचुका हो, फिर भी जिसका कोई उत्तर नहीं दिया जाय तो वहां अननुभाषण निग्रहस्थान समझना चाहिये।

१३- अज्ञान नामक निग्रहस्थानः– परिषद के द्वारा यद्यपि वादी के द्वारा कहा हुआ वाक्य जान लिया या समझलिया गया हो किन्तु जो प्रतिवादी के द्वारा नहीं समझा गया हो ऐसे वाक्य को अज्ञाननिग्रह स्थान कहते हैं।

१४- अप्रतिभा– "उत्तरस्य अप्रतिपत्तिः अप्रतिभा दूसरे के पक्ष का प्रतिषेध या खंडन करना उत्तर कहलाता है। जब वह प्राप्त नहीं होता है तब अप्रतिभा निग्रहस्थान

कहलाता है ।

१५- पर्यनुयोज्योपेक्षण नाम निग्रहस्थानः- निग्रह स्थान को उपपत्ति पूर्वक कहना "यह तुम्हारी पराजय का कारण प्राप्त होगया है अतः तुम पराजित हो" सो पर्यनुयोज्य कहलाता है तथा इसकी भी जो उपेक्षा करता है, इस पर ध्यान नहीं देता वह इस (पर्यनुयोज्योपेक्षण) निग्रह स्थान से पराजित समझा जाता है ।

१६- निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रह स्थानः- जो युक्ति संगत कथन कर रहा हो, पराजित होने के योग्य भी जो नहीं हो ऐसे वादी के प्रति जो यह कहता है कि "तुम पराजित हो गये हो, हार गये हो" सो ऐसा कहने वाला व्यक्ति ही इस निग्रह स्थान से ग्रहीत होता है कारण कि उसने झूठे ही जो दोष नहीं पाये जाते हैं उनका उद्भावन किया है ।

(१७) विक्षेप नामक निग्रहस्थानः- वाद को प्रारंभ कर के, जिस अर्थ की सिद्धि करना है उसके सिद्ध करने की सामर्थ्य न होने से [समय] व्यतीत करने के लिहाज से जहां किसी दूसरे काम करने का बहाना लेना " इस समय मेरे एक कर्तव्य कर्म के करने में बाधा आ रही है उसे कर के फिर उत्तर दूंगा या कहूंगा यह विक्षेप निग्रहस्थान कहलाता है ।

१८– मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थानः– जो दूसरे के द्वारा बतलाये गये दोषका खंडन न करके प्रत्युत उसे स्वीकार कर दूसरे के पक्ष में दोष को बतलाना है सो मतानुज्ञा निग्रहस्थान कहलाता है। जैसे किसी ने कहा आप चौर हैं पुरुष होने से, जो पुरुष होते हैं वे चौर होते हैं जैसे कि प्रसिद्ध चौर'' ऐसा उसके कहने पर "तब तो आप भी चौर हुये, पुरुषत्व की समानता होने से,' ऐसा कहना, मतानुज्ञा कहलाया कारण कि दूसरे की बात को स्वीकार कर लिया गया वादी के द्वारा।

१९- न्यून नामक निग्रह स्थानः- पंचावयव वाक्यों के प्रयोग की जहां आवश्यकता है वहां किसी एकाध अंग की कमी करके वाक्यों का प्रयोग करना न्यून निग्रहस्थान कहलाता है। पंचावयवों के नाम ये हैं- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन– ये पांच अनुमान के अंग भी कहलाते हैं।

२०- अधिक नामक निग्रहस्थानः– जहाँ एक ही हेतु या दृष्टान्त से प्रतिपादित अर्थ की सिद्धि हो सकती है वहाँ ज्यादा वाक्यों का हेत्वन्तरों का या दृष्टान्तान्तरों का प्रयोग करना अधिक निग्रहस्थान कहलाता है।

(२१) अपसिद्धान्त नामक निग्रहस्थानः- पहिले किसी

सिद्धान्त को स्वीकार कर, वाद कथा में प्रवृत्त हुए तथा जिस पदार्थ की सिद्धि करना उसकी सिद्धि करने के आवेश में अथवा खंडन करने के जोश में आकर अपने सिद्धान्त के विरुद्ध भी बोलने लग जाना अपसिद्धान्त नामक निग्रहस्थान कहते हैं। जैसे पहिले शब्दादिक को नित्य सिद्ध करके उनको अनित्य कहने लग जाना।

(२२) हेत्वाभास नामक निग्रहस्थानः–जो वस्तुतः हेतु के लक्षणसे युक्त न हों किन्तु ऊपर से हेतु (जैसे जँचते हों उन्हें हेत्वाभास कहते हैं। इनके असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, कालात्ययपदिष्ट, प्रकरणसम नामक पांच भेद भी हेत्वाभास निग्रहस्थान के अंतर्गत हैं।

इन निग्रहस्थानों का प्रयोग वादविवाद में वादी प्रतिवादी लोग करते है। साथ ही इनके द्वारा जय पराजय के निर्णय में भी सहायता मिलती है।

(अपूर्ण)

तेईसवां अध्याय

सूत्र- अणुसंख्याताख्यसंख्याताख्यनंताणुग्राह्याहाराग्राह्याहारग्राह्यतैजसाग्राह्यतैजसग्राह्यभाषाग्राह्यभाषाग्राह्यमनोऽग्राह्यमनः कार्माणध्रुवसांतरनिरंतरशून्यप्रत्येकशरीरध्रुवशून्यबादर निगोदशून्यसूक्ष्मनिगोदनभोमहास्कन्धवर्गणा वर्गणाः ॥१॥

अर्थ– पुद्गल परमाणुओं के समूह को वर्गणा कहते

हैं। इनके सामान्य रूप से तेईस प्रकार या भेद होते हैं। भेदों के नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:-

(१) अणु वर्गणा (२) संख्याताणु वर्गणा (३) असंख्याताणुवर्गणा (४) अनन्ताणु वर्गणा (५) ग्राह्य आहार वर्गणा (६) अग्राह्य आहार वर्गणा (७) ग्राह्य तैजस वर्गणा (८) अग्राह्य तैजस वर्गणा (९) ग्राह्य भाषा वर्गणा (१०) अग्राह्य भाषा वर्गणा ।११। ग्राह्य मनो वर्गणा ।१२। अग्राह्य मनो वर्गणा ।१३। कार्माण वर्गणा ।१४। ध्रुव वर्गणा १५-सान्तर निरंतर वर्गणा ।१६। शून्य वर्गणा ।१७। प्रत्येक शरीर वर्गणा ।१८। ध्रुव शून्य वर्गणा ।१९। बादरनिगोद वर्गणा ।२०। शून्य वर्गणा ।२१। सूक्ष्म निगोद वर्गणा ।२२। नभो वर्गणा ।२३। महास्कन्ध वर्गणा ।

सूत्रः— सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृत्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभा हास्यरत्यरतिशोकभय जुगुप्सापुंस्त्रीनपुंसकवेदा मोहनी पञ्चमसत्वस्थानप्रकृतयः ॥२॥

अर्थ— तेईसप्रकृतियां मोहनीय कर्म के पाचवें सत्वस्थान की तेईस प्रकृतियाँ होती है, उनके नाम इस प्रकार हैं:-

।१। सम्यङ्मिथ्यात्व नामक मोहनीय कर्म सत्वस्थान प्रकृति (इसी तरह आगे लिखे जाने वाले नामों के साथ

मी 'नामक मोहनीय कर्म सत्वस्थान प्रकृति' पद जोड़ लेना चाहिये) ।२। सम्यक्प्रकृति ।३। अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध ।४। अप्रत्याख्यानावरण मान ।५। अप्रत्याख्याना-वरण माया ।६। अप्रत्याख्यानावरण लोभ ।७। प्रत्या-ख्यानावरण क्रोध ।८। प्रत्याख्यानावरण मान ।६। प्रत्या-ख्यानावरण माया ।१०। प्रत्याख्यानावरण लोभ ।११। संज्वलन क्रोध ।१२। संज्वलन मान ।१३। संज्वलन-माया ।१४। संज्वलन लोभ ।१५। हास्य ।१६। रति ।१७। अरति ।१८। शोक ।१६। भय ।२०। जुगुप्सा ।२१। पु वेद ।२२। स्त्री वेद ।२३। नपु सक वेद

१— सुदर्शनामोघसुप्रबुद्धयशोधरसुभद्रसुविशालसुमनसौमनसप्रीतिप्रसारेष्वादित्यार्चिमालिनीवैरवैरोचनसोमसोमरूपाङ्कस्फटिकविजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिविमानेपूद्भवाःकल्पातीता. ॥२॥

अर्थ— वैमानिकदेवोंके दो भेद हैं, एक कल्पोपन्न दूसरा कल्पातीत। प्रथम स्वर्ग से लेकर सोलह स्वर्गों में निवास करने वाले देवों को कल्पोपन्न देव कहते हैं। उनकी यह संज्ञा इस कारण है कि इन विमानों के वासियोंमेंइन्द्र सामानिक आदि दश प्रकार की कल्पना की जाती है सोलह स्वर्गों के ऊपर जो देव नवग्रैवेयकों, नव अनुदिशों और पंचपंचोत्तरों में रहते हैं। उन्हें कल्पातीत कहते हैं। इनकी यह संज्ञा सनिमित्तक है। इन विमानों के

रहने वाले देवोंमें इन्द्र सामानिकादि रूप भेद नहीं पाये जाते हैं सभी देव अपने आपको अहं इन्द्रः अहं इन्द्रः कहते और समझते हैं, इसलिये ये देव अहमिन्द्र कहलाते हैं।

जिनमें ये अहमिन्द्र रहते हैं उन कल्पातीत विमानों की संख्या तेईस है । नाम उनके (विमानों के) अलग अलग इस प्रकार हैं —

(१) सुदर्शन नामक कल्पातीत देव (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामों के साथ नामक कल्पातीत देव पद जोड़ते चले जाना चाहिये) (२)अमोघ (३)सुप्रबुद्ध [४]यशोधर [५]सुभद्र [६]सुविशाल [७] सुमनस [८] सौमनस [९]प्रीतिंकर [ये नव ग्रैवेयक हैं जो प्रस्तार रूप में स्थित हैं] (१०) आदित्य (नव अनुदिश) विमानों के मध्य में स्थित यह इन्द्रक विमान है) (११) अर्चि [१२ अर्चिमालिनी(१३) वैर (१४)वैरोचन (ये अनुदिश संबंधी ये चार श्रेणीबद्ध विमान हैं जो चार दिशाओं में स्थित हैं)[१५]सोम [१६ सोमरूपाङ्क [१७] अंक [१८] स्फटिक [ये भी चार विमान हैं जो अनुदिश संबंधी है किन्तु ये प्रकीर्णक प्रकार के हैं और विदिशाओं में स्थित हैं] [१९] विजय [२०] वैजयन्त [२१] जयन्त [२२] अपराजित [ये चार पंचोत्तर विमान संबंधी विमान हैं जो चार दिशाओं में स्थित हैं [२३] सर्वार्थसिद्धि [यह पंचोत्तर संबंधी पां-

यहां इन्द्रक विमान है जो कि मध्य में स्थित है।

इन तेईस विमानों में उत्पन्न होने वाले इन्द्र ज्ञानके अहमिन्द्र देव कहलाते हैं।

सूत्र-ॐ ह्रीं श्रीक्लीं ब्लूं ध्यान सिद्धिपरमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा इति विषमज्वरवारणनिमित्तस्त्रयोविंशत्यक्षरमंत्रः॥४॥

अर्थ– तेईस अक्षरों वाला यह मंत्र है। विषमज्वर को दूर करने में निमित्तभूत यह आदि मंत्र है। इसके अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं:-

ॐ ह्रां श्रीं क्लीं ब्लूं ध्या न सि द्धि प र म यो गी श्व रा य न मो न मः स्वा हा।

सूत्र- ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं सर्व शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा इति त्रयोविंशत्यक्षरमंत्र पञ्चमः॥५॥

अर्थ– तेईस अक्षरों वाले मंत्रों में यह भी एक मंत्र है। इसके अक्षर अलग अलग इस तरह लिखे जायेंगे:-

ॐ ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रौं, ह्रः अ सि आ उ सा अ र्हं स र्वं शा न्तिं कु रु कुरु स्वा हा।

अर्थ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप दो भागों से युक्त कालचक्र चल रहा है प्रत्येक भागमें छह आरे है, इस तरह एक कला काल का चक्र बारह विभागों में विभक्त है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल है और उसका पाचवांभाग दुखमा नामक सरक रहा है। चार भाग इससे पूर्व,व्यतीत हो चुके हैं।

चौथे काल में जो कि व्यतीत हो चुका है, धर्म चक्रके चलाने वाले चौबीस तीर्थंकर हुए थे। उनके नाम इस सूत्रमें गिनाये हैं वे अलग अलग इस प्रकार हैं:-

१- श्री वृषभ नाथ जी २- श्री अजित नाथ जी ३- श्रीसंभव नाथ जी ४- श्री अभिनन्दन जी ५- श्री सुमतिनाथ जी ६-श्रीपद्मप्रभु जी ७- श्री सुपार्श्व नाथ जी ८- श्री चन्द्रप्रभु जी ९- श्री पुष्पदन्त जी १०- श्री शीतलनाथ जी ११- श्री श्रेयान्स नाथ जी १२- श्री वासुपूज्य जी १३- श्री विमल नाथ जी १४ श्री अनन्त नाथ जी १५- श्री धर्मनाथ जी १६ श्री शांतिनाथ जी १७- श्री कुन्थुनाथ जी १८- श्री अरनाथ जी १९- श्री मल्लिनाथ जी २०- श्री मुनिसुव्रत जी २१- श्री नमि नाथ जी २२- श्री नेमि नाथ जी २३- श्री पार्श्वनाथ जी २४- श्री वर्द्धमानजी

इसी चौबीसी को वर्तमान चौबीसी भी कहते हैं।

आजकल इसी चौवीसों के अंतिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामी का तीर्थ प्रवर्तित हो रहा है।

मूल- वृषभगजाश्ववानरचकोरपद्मस्वस्तिकशशिमकरकल्पतरुगंडकमहिषशूकरसेहिवज्रदण्डहरिणाजमत्स्यकलशकूर्मरक्तोत्पलशंखसर्पसिंहास्तच्चिन्हा ॥ २ ॥

अर्थ–जो ऊपर चौवीस तीर्थंकरोंके क्रमसे के नाम गिनाये गये हैं उनमें से प्रत्येक के क्रम से एक एक करके चौवीस चिन्ह पाये जाते हैं। अर्थात् पहिले तीर्थंकर का नाम श्री वृषभनाथ जो है, उनका चिन्ह सूत्र में पहिले स्थानपर उल्लखित वृषभ नामका चिन्ह है, इसी तरह आगे का क्रम भी समझ लेनी चाहिये। चिन्हों के अलग अलग नाम इस प्रकार हैं:–

१- वृषभ चिन्ह २-- गज (हाथी) नामक चिन्ह। ३- अश्व (घोड़ा) ४- वानर (बन्दर)। ५- चकोर ६-पद्म कमल) ७ - स्वस्तिक (सांथिया) ८ - शशि (चंद्रमा ९ - मकर (मगर) १० - कल्पतरू (कल्पवृक्ष) ११-गंडक (गेंडा) १२- महिष (भैंसा) १३- शूकर [सुअर) १४- सेही १५- वज्रदण्ड १६- हरिण १७- अज (बकरा) १८ मत्स्य (मछली) १९ कलश २०-कूर्म (कछुआ) २१ रक्तोत्पल(लाल कमल) २२-शंख २३-सर्प (सांप) २४-सिंह (शेर)

सूत्रः—नाभिजितशत्रुजितारिसंवरमेघ प्रभधारणसुप्रतिष्ठमहासेन-

सुग्रीवदृढरथविष्णुराजवसुपूज्यकृतवर्मसिंहसेनभानुविश्वसेनसूर्ये
सुदर्शनकुंभसुमित्रविजयसमुद्रविश्वयजद्धसेनसिद्धार्थास्तास्सितरः ॥३॥

अर्थः-पूर्व सूत्रमें जिन चौबीस तीर्थंकरोंके चिन्ह गिनाये गये हैं इस सूत्र में उन्हीं तीर्थंकरों के पिताओं के नाम गिनाये गये है। नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:-

१ - नाभिराय - यह प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ नाथजीके पिताका नाम है यही अंतिम कुल कर थे।

(२) जितराय यह तीर्थंकर श्री अजितनाथ जी के पिताका नाम है।

(३) शत्रुजित- श्री संभवनाथ जी के पिताका नाम है।

(४) अरिसंवर- यह श्री अभिनंदन स्वामी के पिता का नाम है।

(५) मेघप्रभु- यह श्री सुमतिनाथ जी के पिता का नाम है।

६ - धारण - श्री पद्मप्रभ स्वामीके ये जनक थे।
७ - सुप्रतिष्ट - श्री सुपार्श्वनाथ भगवानके पिता का यह नाम है।

८ - महासेन - श्री चन्द्रप्रभु स्वामीके पिता का यह नाम है।

९ - सुग्रीव - यह श्री पुष्पदन्त स्वामी के पिताका

का नाम है।

११-विष्णुराज-यह श्री श्रेयान्सनाथ भगवान के पिता का नाम है।

१२-वसुपूज्य-यह श्रीवासुपूज्य स्वामीके पिता का नाम है

१३-कृतवर्मा-श्री विमलनाथजी के पिता का यह नाम है

१४-सिंहसेन-श्री अनन्तनाथ जी के पिता का यह नाम है

१५-भानुराय-श्री धर्मनाथ जी के पिता का यह नाम है

१६-विश्वसेन-श्री शांतिनाथ जी के ये जनक थे।

१७-सूर्यसेन-यह श्रीकुन्थु नाथ जी के पिता का नाम है।

१८-सुदर्शन-यह श्री अरनाथ जी के पिता का नाम है।

१९-कुंभराय-यह श्री मल्लिनाथजी के जनक का नाम है

२०-सुमित्र-यह श्री मुनिसुव्रत स्वामीके पिता का नाम है

२१-विजय-यह श्री नमिनाथ जी के पिता का नाम है।

२२-समुद्रविजय-यह श्री नेमिनाथजी के पिता का नाम है

२३-अश्वसेन-यह श्री पार्श्वप्रभु के पिता का नाम है।

२४-सिद्धार्थ-श्री वर्धमान स्वामीके जनक का यह नाम है

सूत्र-मरुदेवी रोहणीसेनासिद्धार्थासुमंगलासुसीमापृथिवी सुलक्ष्मणा रामासुनंदाविष्णुश्रीविजयासुरम्यासर्वयशासुव्रतैराश्रीदेवी मित्रारत्नितापद्मावतीवमाशिवादेवीवामाप्रियकारिण्यस्तन्मातारः ॥४॥

अर्थ-पूर्व सूत्रमें चौबीस तीर्थंकरों के पिताओं के

नाम बतला दिये जा चुके हैं। उसी क्रमसे इस सूत्रमें उन तीर्थंकरों की माताओं के नाम गिनाये जारहे हैं। नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

१- मरूदेवी २- रोहिणी ३- सेना ४- सिद्धार्था ५- सुमंगला ६- सुसीमा ७- पृथिवी ८- लक्षमणा ९-रामा १०- सुनन्दा ११- विष्णुश्री १२- विजया १३- सुरम्या १४- सर्वयशा १५- सुव्रता १६- ऐरादेवी १७-श्रीदेवी १८- मित्रा १९- रक्षिता २० पद्मावती २१-वप्रा २२- शिवादेवी २३- वामा २४- प्रियकारिणी।

स्पूर्वतृतीयभवनामानि ॥४॥

अर्थः तीर्थंकर पद प्राप्तिविरले ही महापुण्यशील पुरुषार्थी पुरुषोत्तमोंको होती है। इस पदकी प्राप्तीके पूर्व प्राणी बहुत लम्बे समयसे जन्म मरण के दुख भोगता हुआ संसार में चक्कर काटता रहा और उसने अनेकों ही नाम धारण किये। इस सूत्रमें भगवान तीर्थंकरोंके उन नामोंका गिनाया गयाहै पूर्व तीसरे भव. ये नाम अलग अलग इसप्रकार हैं:—

(१) वज्रनाभि (२) विमलवाहन (३) विपुलवाहन (४)

विपुलख्याति (५) महाबल (६) अतिबल (७) अपराजित (८) नंदिषेण (९) पद्म (१०) महापद्म (११) पद्मप्रभ (१२) पंकजगुल्म (१३) नलिनगुल्म (१४) पद्मासन (१५) पद्मरथ (१६) दृढ़रथ (१७) मेघरथ (१८) सिंहरथ (१९) वैश्रवण (२०) श्रीधर्मा (२१) सुरश्रेष्ठ (२२) सिद्धार्थ (२३) आनन्द (२४) सुनंद

ष्ठिलान्तैस्पूर्वतृतीयभवपितृनामानि । ६।

अर्थः– तीसरे भवमें जो नाम थे वे गिना दिये गये हैं। इस सूत्रमें उनके नाम गिनाये जा रहे हैं जो उस भवमें पिता थे। नाम अलग अलग इस प्रकार हैं :—

(१) वज्रसेन (२) महातेज (३) रिपुदमन (४) स्वयंप्रभ (५) विमलवाहन (६) सीमंधर (७) पिहिताश्रव (८) अरिंदम (९) युगधर (१०) सर्वजनानन्द (११) अभ्यानन्द (१२) वज्रदन्त (१३) वज्रनाभि (१४) सर्वगुप्त (१५) गुप्तिमन् (१६) चिन्तारक्ष (१७) विमलवाहन (१८) घनरव (१९) धीरसेन (२०) संवर (२१) त्रिलोकीरवि (२२) सुनंद (२३) वीतशोक (२४) प्रोष्ठिल ।

सूत्रः–सर्वार्थसिद्धवैजयन्तग्रैवेयकवैजयन्तोर्ध्वग्रैवेयकवैजयन्तमध्यग्रैवेय-

कवैजयन्तापराजितारणपुष्पोत्तर विमानकापिष्टशुक्रमहस्रारपुष्पोत्तरपुष्पोत्तरपुष्पोपुष्पोत्तरसर्वार्थसिद्धिविजयापराजितप्राणतवैजयन्तानत पुष्पोत्तरास्तेषां पूर्वाश्रामस्वर्गविमानानि ॥७॥

चौवीस तीर्थंकर उस मानवपर्यायकी प्राप्ति, जिसके कि बाद फिर जन्ममरणके दुःख नहीं भोगने होंगे, जिसके बाद सुख और आनन्द के अपार पारावार में सतत किलोले करतेहुए रहना होगा, पूर्वस्वर्ग के विमानोंमें रहतेहुए देवोंके सुखोंको भोगते हैं और वहांसे चयकर मानवपर्यायधारण करते हैं। इसमें कर्मों को काट केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और अंतमें तीर्थप्रवर्तन करते हुए सिद्धपद प्राप्त करलेते हैं। इसमें उन विमानों का नमोल्लेख किया गया है जहां चय कर इनने अंतिम मानवपर्याय प्राप्तकी थी। नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

१ पहिले तीर्थंकर श्रीआदिनाथजी सर्वार्थसिद्धि नामके विमानसे चयकर तीर्थंकर हुए। इसी प्रकार क्रम से एक भगवान के साथ एक एक विमान को जोड़ लेना चाहिये। (२) वैजयन्त विमान (३) ग्रैवेयक विमान (४) वैजयन्त विमान (५) उर्ध्वग्रैवेयक (६) वैजयन्त (७) मध्यग्रैवेयक (८) वैजयन्त (९) अपराजित विमान (१०) आरण (११) पुष्पोतरविमान (१२) कापिष्ट (१३) शुक्र

(१४) सहस्रार (१५) पुष्पोत्तर (१६) पुष्पोत्तर (१७) पुष्पोत्तर (१८) सर्वार्थसिद्धि (१९) विजय (२०) अपराजित (२१) प्राणत (२२) वैजयन्त (२३) आनत (२४) पुष्पात्तर विमान ।

मूत्र -- गोवदनमहायक्षत्रिमुखयक्षेश्वरतुम्बरमातगविजयाजितब्रह्म ब्रह्मेश्वर कुमारषण्मुखपातालकिन्नरकिंपुरुष गरुड गंधर्व कुवेर वरुण भृकुटि गोमेधपार्श्वमातंग गुह्यकस्तेषां समीपस्था यक्षा :। ८ ।

अर्थः-उन तीर्थंकरों के समीप में पाये जानेवाले यक्ष भी हुआ करते हैं। नाम उनके अलग अलग इस प्रकार से हैं:

(१) गोवदन नामकयक्ष (२) महायक्ष (३) त्रिमुख (४) यक्षेश्वर (५) तुम्बुरव (६) मातंग [७] विजय (८) अजित (९) ब्रह्म (१०) ब्रह्मेश्वर (११) कुमार [१२] षण्मुख [१३] पाताल १४- किन्नर १५- किंपुरुष १६-गरुड १७- गंधव १८- कुबेर १९- वरुण २०- भृकुटि २१- गोमेध २२- पार्श्व २३- मातंग २४- गुह्यक ।

मूत्रः-- चक्रेश्वरीरोहिणीप्रज्ञप्तिवज्रशृंखलावज्राकुशाऽप्रतिचक्रेश्वरीपुरुषदत्तामनोवेगाकालीज्वालामालिनीमहाकालीगौरीगांधारीवैरोटीमोलसानन्तमतीमानसीमहामानसीजयाविजयाऽपराजिताबहुरूपिणी- कुष्मांडीपद्मासिद्धायिन्यस्तन्मातृसमीपस्थयक्षिण्यः ॥९॥

अर्थ-- तीर्थंकरोंकी माताओंके समीपमें रहने वाली चौबीस यक्षिणियां होती हैं। ये भगवानकी माता

की सेवा करती हैं। नाम उनके अलग अलग इस प्रकार से हैं:-

१- चक्रेश्वरी २- रोहिणी प्रज्ञप्ति ३- वज्रशृंखला ४- वज्रांकुशा ५- अप्रति चक्रेश्वरी ६- पुरुषदत्ता ७- मनोवेगा ८- काली ९-ज्वाला मालिनी १०-महाकाली ११-गौरी १२-गांधारी १३-वैरोटी १४-मोलसा १५-अनन्तमती १६- मानसी १७-महामानसी १८- जया १९-विजया २०- अपराजिता २१- बहुरुपिणी २२- कुष्माण्डी २३- पद्मावती २४- सिद्धायिनी।

मूल:—बाहुबल्यमिततेजःश्रीधरदशभद्रप्रसेनजिच्चन्द्रवर्णाग्निमुक्तसनत्कुमारवत्सराजकनकप्रभश्वेतवर्णशांतिकुन्थ्वरविजयराजश्रीचन्द्रनलहनुमानबलगजवसुदेवप्रद्युम्ननागकुमारश्रीपालजम्बूस्वामिनःकामदेवाः॥१०॥

अर्थः- अत्यन्त रूपशाली राजपुत्र कामदेव कहलाते थे। ये भी चतुर्थकाल में हो चुके हैं। संख्या इनकी चौबीस है, नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:—

१- बाहुबली २- अमिततेज ३- श्रीधर ४- दशभद्र ५- प्रसेनजित ६- चन्द्रवर्ण ७- अग्निमुक्त ८- सनत्कुमार ९- वत्सराज १०- कनकप्रभ ११- स्वेतवर्ण १२- शांति १३- कुन्थु १४- अर १५- विजयराज १६- श्रीचन्द्र १७- नल १८- हनुमान १९- बलव २०- गजकुमार २१- वसुदेव २२- नागकुमार २३- श्रीपाल २४- जम्बूकुमार या

जम्बूस्वामी ।

सूत्रः—महापद्मसुपार्श्वस्वयंप्रभसर्वात्मभूतदेवपुत्रकुलपुत्रोदंकप्रोष्ठिलजयकीर्तिमुनिसुव्रतारनिष्पापनिष्कषायविपुलनिर्मलचित्रगुप्तसमाधिगुप्तस्वयम्भ्वनिवर्तकजयविमलदेवपालानंतवीर्या भाव्युत्सर्पिण्यां तीर्थंकराः ॥११॥

आगे जो उत्सर्पिणी काल आने वाले हैं, उसमें भी चौबीस तीर्थंकर होंगे। उनके अलग अलग नाम इस प्रकार से हैं:–

१-महापद्म २-सुरदेव ३-सुपार्श्व ४-स्वयंप्रभ ५-सर्वात्मभूत ६-देवपुत्र ७-कुलपुत्र ८-उदङ्क ९-प्रोष्ठिल १०-जयकीर्ति ११-मुनिसुव्रत १२-अरनाथ १३-निष्पाप १४-निष्कषाय १५-विपुल १६-निर्मल १७-चित्रगुप्त १८-समाधिगुप्त १९-स्वयंभू २०-अनिवर्तक २१-जयनाथ २२-विमलनाथ २३-देवपाल २४-अनंतवीर्य ।

सूत्रः-श्रेणिकसुपार्श्वोदंकप्रोष्ठिलकृतसूयक्षत्रियपाविलशंखनंदसुनंदशशांकसेवकप्रेमकातोरणरैवतकृष्णबलरामभगलिविगलिद्वीपायनमाणवकनारदसुरूपदत्तसात्यकिपुत्रास्तत्पूर्वतृतीयभवनामानि ॥१२॥

अर्थ–पूर्वसूत्र में आगे आने वाले उत्सर्पिणीकाल संबंधी चौबीस तीर्थंकरों के नाम गिनाये गये हैं इस सूत्र में उन्हीं चौबीस तीर्थंकरों के पूर्व तीसरे भवके नामों को (इस सूत्र में) गिनाया गया है:—

१- श्रेणिक २- सुपार्श्व ३- उदङ्क ४- प्रोष्ठिल ५-

कृतप्रय ६- क्षत्रिय ७- पाविल ८- शंख ९- नंद १०- सुनन्द ११-शशांक १२- सेवक १३- प्रेमक १४- आतोरण १५- रैवत १६- कृष्ण १७- बलराम १८- भगलि १९- विगलि २०- द्वीपायन २१- माणवक २२- नारद २३- सुरूपदत्त २४- सात्यकिपुत्र ।

सूत्रः–श्रीनिर्वाणसागरमहासाधुविमलप्रभश्रीधरसुदत्तामलप्रभोद्धाराङ्गिरसन्मतिसिन्धुकुसुमाञ्जलिशिवगणोत्साहज्ञानेश्वरपरमेश्वरविमलेश्वरयशोधरकृष्णमतिज्ञानमतिशुद्धमतिश्रीभद्रातिक्रान्तशान्ताभूतोत्सर्पिणीकाले तीर्थंकराः ॥१३॥

अर्थः– ये उस उत्सर्पिणीकाल संबंधी चौबीस तीर्थंकर हैं जो कि व्यतीत हो चुकी है । इन्हें भूत उत्सर्पिणी कालीन चौबीस तीर्थंकर भी कहते हैं । नाम इनके अलग अलग इस प्रकार हैं :—

१- श्रीनिर्वाण २- सागर ३- महासाधु ४- विमलप्रभ ५- श्रीधर ६- सुदत्त ७- अमलप्रभ ८- उद्धार ९- अङ्गिर १०-सन्मति ११- सिंधु १२- कुसुमाञ्जलि १३- शिवगण १४- उत्साह १५- ज्ञानेश्वर १६- परमेश्वर १७- विमलेश्वर १८- यशोधर १९- कृष्णमति २०- ज्ञानमति २१- शुद्धमति २२- श्रीभद्र २३- अतिक्रान्त २४- शान्त ।

सूत्रः—बादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पति-विकलसकलेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता जीवसमासाः ॥१४॥

अर्थ :-- जीवसमासके अनेक प्रकारोंमेंसे चौवीस भेदवाला एक प्रकार इस सूत्रमें लिखा गया है। भेदोंके नाम पृथक् पृथक् रूप से इस प्रकार हैं :-

(१) बादर पृथ्वी पर्याप्त (२) बादर पृथ्वी अपर्याप्त (३)सूक्ष्म पृथ्वी पर्याप्त (४)सूक्ष्म पृथ्वी अपर्याप्त (५)बादर अप् (जल)पर्याप्त (६) बादर अप् अपर्याप्त (७) सूक्ष्म अप् पर्याप्त (८) सूक्ष्म अप् अपर्याप्त (९) बादर तेज (आग) पर्याप्त (१०)बादर तेज अपर्याप्त (११) सूक्ष्म तेज पर्याप्त (१२) सूक्ष्म तेज अपर्याप्त (१३) बादर वायु पर्याप्त (१४) बादर वायु अपर्याप्त (१५) सूक्ष्म वायु पर्याप्त (१६)सूक्ष्म वायु अपर्याप्त (१७) बादर वनस्पति पर्याप्त (१८) बादर वनस्पति अपर्याप्त (१९) सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त (२०) सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त (२१) विकलेन्द्रिय पर्याप्त (२२)विकलेन्द्रिय अपर्याप्त (२३) सकलेन्द्रिय पर्याप्त (२४) सकलेन्द्रिय अपर्याप्त

सूत्रः-मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्प्रकृतयोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभाहास्यरत्यरतिशोकभयजगुप्सा पुंस्त्रीनपुंसकवेदामोहनीयचतुःसत्वस्थानप्रकृतयः॥१५॥

अर्थ :— मोहनीय कर्म के चौबीस प्रकृति वाले चौथे सत्वस्थानकी चौबीस प्रकृतियां इस सूत्रमें गिनाई गई हैं। नाम उनके अलग अलग इस प्रकार हैं :--

(१)मिथ्यात्व नामक प्रकृति (२) सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति (३) सम्यक्त्व प्रकृति (४) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध (५) अप्रत्याख्यानावरणी मान (६) अप्रत्याख्यानावरणी-माया (७) अप्रत्याख्यानावरणी लोभ (८) प्रत्याख्याना-वरणी क्रोध (६) प्रत्याख्यानावरणी मान (१०) प्रत्याख्यानावरणी माया (११) प्रत्याख्यानावरणी लोभ (१२) संज्वलन क्रोध (१३) संज्वलन मान (१४) संज्वलन माया (१५) संज्वलन लोभ (१६) हास्य (१७) रति (१८) अरति (१६) शोक (२०) भय (२१) जुगुप्सा (२२) स्त्रीवेद (२३) पुंवेद (२४) नपुंसकवेद ।

सूत्रः-संज्वलनक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरति शोकभयजुगुप्सापुंस्त्री नपुंसकवेदाः सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगसत्यासत्योभयानुभय-वचनयोगौदारिकाहारकमिश्रकाययोगाःप्रमत्ताविरतेष्वाश्रवाः। १६।

अर्थ :- प्रमत्तविरत नामके छट्वें गुणस्थानमें चौवीस प्रकृतियों का आश्रव होता है उन प्रकृतियों के अलग अलग नाम इस प्रकार हैं :-

(१) संज्वलन क्रोध (२) संज्वलन मान (३)संज्वलनमाया (४) संज्वलन लोभ (५) हास्य (६) रति (७) अरति (८) शोक (६) भय (१०)जुगुप्सा (११) पुंवेद (१२) स्त्रीवेद (१३) नपुंसकवेद (१४) सत्य मनोयोग (१५) असत्य मनोयोग (१६) उभय (सत्यासत्य) मनोयोग (१७) अनु-

भय मनोयोग (१८) सत्य वचनयोग (१९) असत्य वचनयोग (२०) उभय वचनयोग (२१) अनुभय वचनयोग (२२) औदारिककाययोग (२३) आहारककाय योग (२४) आहारकमिश्रकाययोग।

सूत्र-ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्णसोदराणं ह्रां ह्रीं हं फट् स्वाहा" इति चतुर्विंशत्यक्षरर्द्धिमंत्रः। ।१७।

अर्थ-इस सूत्रमें ऋद्धिमंत्र उल्लिखित है। मंत्र में चौबीस अक्षर हैं। अक्षरोंका क्रम अलग अलग इस प्रकार से है:—

ॐ ह्रीं ण मो अ रि हं ता णं ण मो सं भि ण्ण सो द ण णं ह्रां ह्रीं हं फट् स्वा हा।

सूत्र-कृतिवेदनास्पर्शकर्मप्रकृतिसुबन्धननिबन्धनप्रक्रमोपक्रमोदयमोक्ष संक्रमलेश्या कर्मलेश्यापरिणाम सातासात तदीर्घह्रस्वभवधारणीयपुद्गलात्त-निधत्तानिधत्तनिकाचितानिकाचितकर्मस्थितिपश्चिमस्कंधा अग्रायणीपूर्व गतचयनलब्धि गतकर्मप्रकृतिप्राभृतार्थाधिकाराः।१८।

अर्थः– चौदहपूर्वोंमेंसे एक पूर्वका नाम अग्रायणीपूर्व है। अग्रका अर्थ है द्वादशांगोंमें प्रधानभूत वस्तु अयन ज्ञानको कहते हैं। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ ऐसा पूर्व जो द्वादशांगोंमें प्रधानभूत वस्तुका ज्ञान करावे उसका कथन करे। यह पूर्व चौदह वस्तुगत दोसौअस्सी प्राभृतोंके छ्यानवे लाख पदों द्वारा अंगोंके अग्र अर्थात्

प्रधानभूत पदार्थोका कथन करता है।

इस अग्रायणी पूर्वमें अर्थाधिकार नामक उपक्रम है। उस अर्थाधिकारके चौदह प्रकारोंमें चयनलब्धि है। उस चयनलब्धि गत कर्मप्रकृतिप्राभृत नामक अर्थाधिकार है। इस सूत्रमें उसी अर्थाधिकारके चौबीस भेदोंको गिनाया गया। भेदोंके अलग अलग नाम इसप्रकार हैं:-
(१) कृतिनामक कर्मप्रकृतिप्राभृतार्थाधिकार (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ भी "नामक कर्म प्रकृतिप्रभृत अर्थाधिकार" पद जोड़ लेना चाहिये) (२) वेदना (३) स्पर्श (४) कर्म (५) प्रकृति (६) बन्धन (७) निबन्धन (८) प्रक्रम (९) उपक्रम (१०) उदय (११) मोक्ष (१२) संक्रम [१३] लेश्या [१४] लेश्याकर्म [१५] लेश्यापरिणाम [१६] सातअसात [१७] दीर्घ ह्रस्व [१८] भवधारणीय [१९] पुद्गलत्व [२०] निधत्त अनिधत्त [२१] निकाचित अनिकाचित [२२] कर्मस्थिति [२३] पश्चिमस्कन्ध [२४] अल्पबहुत्व

सूत्र -साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्ष-वर्ण्यावर्ण्य-विकल्प-साध्य प्राप्त्य-प्राप्ति प्रसङ्ग प्रतिदृष्टान्तानुत्पत्ति संशयप्रकरणाहेत्वर्थापत्त्यविशेषोपपत्त्युपलब्ध्यनुपलब्धि नित्य.नित्य कार्यसमा जाति दूषणाभासाः ।१६।

अर्थः-इस सूत्रमें जाति नामक दूषणाभासके चौबीस भेदोंको गिनाया गया है। जाति का अर्थ है वह साधर्म्य और

वैधर्म्यके द्वारा उपालम्भ दिया जा सके। अर्थात् वह हेतु जो किसी पक्षकी स्थापनाकेलिये प्रयुक्त किया गया हो उसके प्रतिरोध या विरोध करने में जो असमर्थ हो उसे जाति नामक दूषणाभास कहते हैं। न्यायसूत्रमें "साधर्म्यवैधर्म्याभ्याम् प्रत्यवस्थानं जातिः" इस सूत्र द्वारा जाति का लक्षण किया गया है जो हेतु सरीखा जचता हो सच्चे अर्थों में साधन न हो और जबर्दस्ती अडंगा या उलाहना देने के लिये खड़ा कर दिया गया हो वह जाति कहलाता है। भेदों के नाम इस प्रकार हैं :—

१– साधर्म्यसम नामक जाति दूषणाभास (इसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले नामोंके साथ "जाति दूषणाभास" पद जोड लेना चाहिये) २-वैधर्म्य सम ३–उत्कर्षसम ४–अपकर्ष सम ५– वर्ण्य सम ६– अवर्ण्यसम ७-विकल्पसम ८-साध्यसम ९–प्राप्तिसम १०–अप्राप्तिसम ११ प्रसङ्गसम १२-- प्रतिदृष्टान्तसम १३-- अनुपपत्तिसम १४--संशयसम १५-- प्रकरणसम १६-- अहेतुसम १७--अर्थापत्तिसम १८--अविशेषसम १९--उपपत्तिसम २०-- उपलब्धिसम २१--अनुपलब्धिसम २२--नित्यसम २३--अनित्यसम २४–कार्यसम ।

१- साधर्म्यसम नामक जातिदूषणाभासः–हेतु का प्रयोग करनेवाला वादी जबकि साधर्म्यरूपसे साधन

को कहकर अपने इष्टपक्षका उपसंहार करने लगा तब साध्यधर्म से ही प्रतिषेध करना उपालम्भ देना साधर्म्यसम प्रतिषेध कहलाता है। जैसे" शब्द अनित्य है" कारण कि वह प्रयत्न के बिना नहीं होता है, जो प्रयत्न के बिना नहीं होता वह अनित्य होता है जैसे घड़ा इस प्रकार साधर्म्य रूप से (अन्वय व्याप्ति दिखलाते हुए) हेतु के प्रयोग करने पर जातीवादी (असत उत्तर कहने वाला) साधर्म्य रूप से ही उपालम्भ देता है कि शब्द नित्य है अवयव रहित होने से जो अवयव रहित होता है वह नित्य होता है जैसे कि आकाश इसप्रकार पूर्ववत अनुमानमें साध्य का निषेध करने के लिये जो उत्तर अनुमान का प्रयोग करता है वह साधर्म्यसमनामक जात्युत्तर है।

(२) वैधर्म्यसम नामक दूषणाभासः—साधर्म्यसमके समान जब साधनका प्रयोग करनेवाला वादी वैधर्म्य से साधन को कह कर अपने इष्टपक्षका उपसंहार करने लगे तब साध्यधर्मसे विपरीतको सिद्ध करने के लिये वैधर्म्य रूपसे ही प्रतिषेध करना या उपालम्भ देना वैधर्म्यसम प्रतिषेध कहलाता है।जैसे शब्द अनित्य है प्रयत्ना विनाभावि नहीं होता जैसे अनित्य नहीं होता वह वह प्रयत्नाविनाभावि भी नहीं होता जैसे आकाश" इस प्रकार इस अनुमान के विरोध करने के लिये जो ऐसा

कहता कि "शब्द नित्य है निरवयव होने से, जो नित्य नहीं होता वह निरवयव भी नहीं होता जैसे कि घड़ा" सो वैधर्म्यसम नामक जात्युत्तर है।

(३) उत्कर्षसम नामक जातिदूषणाभासः—साध्यधर्मीमें नहीं भी पाये जाने वाले दृष्टान्त धर्म को आरोपित करतेहुए दूषण देना उत्कर्षसम जाति कहलाता है जैसे शब्द अनित्य है। प्रयत्नानन्तरीयक होने से जैसे घड़ा" ऐसा अनुमान प्रयोग करने पर दूसरा कहता है कि यदि प्रयत्नानन्तरीयक होने से घड़ेके समान शब्द अनित्य है तो घड़े की तरह शब्दको मूर्त भी होना चाहिये। यदि वह मूर्त नहीं है तो (वह) अनित्य भी न होवे, इस प्रकार दृष्टान्त के धर्म अनित्यत्व के सिवाय मूर्तत्व नामक धर्म को बढ़ा कर आपत्ति उपस्थित की गई है।

(४) अपकर्षसम नामक दूषणाभास :– साध्यधर्मी में पाये जाने वाले धर्मको घटा कर उपालम्भ देना सो अपकर्षसमा जाती है जैसे शब्द अनित्य है, प्रयत्नानन्तरीयक होने से जैसे कि घट " इस अनुमानके प्रयोग करने पर कहना कि दृष्टान्तभूत घट अश्रावण देखा गया है, उसी के समान शब्द का भी अश्रावण होना चाहिये। अन्यथा वह अनित्य भी न हो, इस प्रकार साध्यधर्मीके धर्मको घटा इसमें दूषण दिया गया है।

(५) [illegible] दूषणाभास और (६)

यसम नामक जाति दूषणाभास :- साध्य धर्मोके ख्यापनीय (कथन करने योग्य) धर्मको वर्ण्य कहते हैं और जिस का कथन नहीं किया जाता है उसे अवर्ण्य कहते हैं वर्ण्य और अवर्ण्य को बदलकर एक को दूसरे के समान करते हुए जो असत् उतर दिये जाते हैं उन्हे क्रमसे वर्ण्यसम और अवर्ण्यसम कहते हैं जैसे "यह कहना कि शब्द को अनित्य रूप से साध्य बनाया जाता है तो घट को भी साध्य बनाना-चाहिये और यदि घट को साध्य नहीं बनाया जाता है तो शब्द को भी साध्य नहीं बनाना चाहिये ।

७-- विकल्पसमा जातिः-धर्मान्तरों अर्थात् दूसरे धर्मो या विकल्प उठाकर असमीचीन या मिथ्या उत्तरदेना विकल्पसम कहलाता है जसा शब्द अनित्य है प्रयत्नानन्तरीयक होने से जैसे कि घट "ऐसे कहने पर दूसरा जवाब देवे कि प्रयत्नानन्तरीयक तो कोई कोई मुलायम देखने में आते हैं जैसे कवेलू या खपरा आदि इसी प्रकार प्रयत्नानन्तरीयक घटादिक तोअनित्य रहे और शब्दादिक नित्य रहे

८-साध्यत्वसमा नामक जातिः-साध्य और दृष्टान्तमें साध्यत्व लेकर दूषण देना साध्यसमा जाति है। जैसे- 'शब्द अनित्य है, प्रयत्नानन्तरीयक होने से जैसे कि घट" इस अनुमानमें साधनका प्रयोग करने पर दूसरा

जवाब देता है कि यदि घड़े के समान शब्द है तो शब्द के समान घड़ा भी हो, शब्द को अनित्यत्वेन साध्य बनाया जाता है तो घड़ा भी साध्य होना चाहिये अन्यथा उसके साथ तुल्यता कैसी ?

(९) प्राप्तिसमा और (१०) अप्राप्तिसमानामक जातिः— प्राप्ति और अप्राप्ति का विकल्प उठा कर दोनों पक्षों द्वारा हेतु दूषण देना प्राप्तिसमा और अप्राप्तिसमा जाति कहलातीं हैं। जैसे वादी ने किसी हेतु का प्रयोग किया तब प्रतिवादी कहता है कि हेतु निकट रह कर साध्य को सिद्ध करता है या दूर रह कर। यदि निकट रह कर सिद्ध करता है तो हेतु की तरह साध्य भी प्रगट दिखाई देगा फिर यह कैसे कहा जायगा कि एक साध्य है और दूसरा हेतु है। और यदि दूर रह कर साध्य को सिद्ध करता है तो तमाम साध्यों को क्यों नहीं सिद्ध कर देवे, ऐसे मिथ्या उत्तर से निरुत्तर करने की चेष्टा करना दूषणाभास है (११) साध्यसमानामक जाति :- साध्यकी सिद्धिकेलिये जिसप्रकार साधनकी आवश्यकता है उसीप्रकार दृष्टान्तकेलिये भी साधनकी ज़रूरत है ऐसा कहना साध्यसमाजाति है। जैसे "शब्द अनित्य है प्रयत्नानन्तरीयक होने से जैसे घट" इस अनुमान में यह पूछना कि घटादिक दृष्टान्तकी अनित्यताकी सिद्धि के

लिये क्या कारण है । यदि इसका कोई कारण नहीं है तो इसके अभावमें साध्यकी सिद्धि भी नहीं हो सकती और यदि सिद्धि मानी जायगी तो अतिप्रसङ्ग हो जायगा। उस दृष्टान्तकेलिये अन्य हेतु दिया जायगा तो उस अन्य हेतुकी सिद्धिके दूसरा साधन बतलाना होगा, तात्पर्य यह है कि अनवस्थाका प्रसंग आजायगा इस रूप से निरुत्तर करने की चेष्टा करना प्रसङ्गसमा जाती है(१२)

प्रतिदृष्टान्तसमा जातिः– वादी के द्वार. प्रदत्त अनुमान या युक्तिमें बिना व्याप्ति दिखलाये मात्र प्रतिदृष्टान्त –दूसरे दृष्टान्त– से उपालम्भ या दोष लगाना प्रतिदृष्टान्त समा जाति है । जैसे, जो शब्द संबंधी अनुमान है उसके दृष्टान्तको लक्षकर कहना कि जैसे प्रयत्नानन्तरीयक घटा सिक अनित्य देखे गये हैं वैसे ही आकाश जो कि प्रयत्ना नन्तरीयक होता है नित्य देखा गया है । इसलिये शब्द अनित्य न होता हुआ आकाश समान नित्य हो इस प्रकार मिथ्या उत्तर देना प्रतिदृष्टान्तसमा दूषण कहलाता है ।

(१३) अनुत्पत्तिसमा जातिः–उत्पत्तिके पहिले ही कारण अभाव बतला कर मिथ्या खंडन करने की चेष्टा करना अनुत्पत्तिसम जाति दूषणाभास है । जैसे जो पहिले शब्द संबंधी अनुमान किया है उसके शब्दरूप धर्मीका लक्ष्य

में एवं जातिवादीका यह कहना कि उत्पत्तिके पूर्व शब्द रूप धर्मी में प्रयत्नानन्तरीयकपना रहता है या नहीं यदि नहीं रहता तो अनित्यरूप साध्यकी सिद्धि कैसे करेगा और जब अनित्यत्व की सिद्धि नहीं होगी तब शब्द अपने आप नित्य सिद्ध हो जायगा। यदि कहा जाय कि अनुत्पन्न शब्द में प्रयत्नानन्तरीयकपना पाया जाता है तो हेतु निराश्रय हो जायगा। ऐसा दूषण देना अनुत्पत्तिसम जाति है कारण कि उत्पत्ति के पहिले तो वह शब्द ही नहीं था फिर प्रयत्नानन्तरीयकत्व (कृत्रिमपना) का प्रश्न ही कैसा

(१४)संशयसमा जातिः-जो पहिले साधर्म्यसम और वैधर्म्यसम दूषण बतलाये हैं उनमें संशय की पुट दे देना संशयसमा जाति है। अथवा व्याप्ति में मिथ्या संदेह बतला कर वादि के पक्ष का खंडन करना संशयसमा जाति है। जैसे शब्द अनित्य है कार्य होने से जैसे घट ऐसा वादी के द्वारा अनुमान प्रयोग करने पर कहना कि कार्य होने से शब्द अनित्य है तो इन्द्रियका विषय होनेसे इसके अनित्यत्वमें संदेह पैदा होता है। इन्द्रियों के विषय नित्य भी होते हैं। [गोत्व घटत्व आदि सामान्य]और अनित्य भी होते हैं। जैसे घट पट आदि। अतः यह निश्चय नहीं हो पता अपितु संदेह बना रहता है कि कार्य होने से शब्द अनित्य है इस प्रकारका दूषणदेना संशयसमा जाति है

भी अनित्य होना चाहिये। ऐसा कहना मात्र दूषणाभास है असत्य उत्तर है।

(१६)उपपत्तिसमा जातिः-उभय अर्थात साध्य और साध्य के विरूद्ध दोनों के कारण दिखला कर वादी की बात का झूठा ही खंडन करना उपपत्ति समा जाति है। जैसे इसी शब्द सम्बंधी अनुमान को लक्ष्य बना कर जातिवादी का कहना कि यदि शब्द के अनित्यत्व में प्रयत्नानन्तरीयकत्व -कृत्रिमता- कारण हे और वह अनित्य है तो उसके नित्यत्व में भी स्पर्शरहितता या निरवयवता कारण है अतः वह नित्य है। यह असत् उत्तर है कारण कि स्पर्शरहितता या निरव यवता के साथ नित्यत्व की व्याप्ति नहीं है, जब कि कृत्रिमताकी अनित्यत्वके साथ व्याप्ति है।

(२०) उपलब्धि सम नामक जाति दूषणाभासः- निर्दिष्ट कारण के अभाव में भी साध्य धर्म की उपलब्धि बतला कर दोष देना उपलब्धि समा जाति है। जैसे शब्द अनित्य है प्रयत्नानन्तरीयक होने से जैसे घट '' इस अनुमान में प्रयत्नानन्तरीयकत्व के अभाव में साध्य [अनित्यत्व) की उपलब्धी बता कर दोष देना कि मेघगर्जना आदिक शब्दों में प्रयत्नानन्तरीयकता कहां है।

(२१) अनुपलब्धिसम नामक जातिदूषणाभासः-उपलब्धि के अभाव में अनुपलब्धि का अभाव कह कर दूषण देना

अनुपलब्धि समा जाती है। जैसे किसी वादी ने कहा कि "उच्चारण के पहिले शब्द नहीं था क्योंकि वह उपलब्ध नहीं होता था। यदि कहा जाय कि उस समय शब्द पर आवरण था इसलिये अनुपलब्ध था तो उसके आवरण की उपलब्धि तो होनी चाहिये जैसे कि साधारणतया देखने में आता है कि कपड़ेसे ढकी हुई चीज नहीं दिखती लेकिन कपड़ा दिखता है इसी तरह शब्द का आवरण भी उपलब्ध होना चाहिये। इसके उत्तर में जाति वादी कहता कि "जैसे आवरणकी उपलब्धि नहीं होती इसी तरह आवरण की अनुपलब्धि भी तो उपलब्ध नहीं होती अतः वादी का पूर्व कथन सिद्ध नहीं होता" यह कथन या उत्तर ठीक नहीं कारण कि आवारणकी उपलब्धि न होने से ही आवरण की अनुपलब्धि उपलब्ध हो जाती है।

(२२) अनित्यसमा जातीः—एककी अनित्यतासे सबको अनित्य कह कर दूषण देना अनित्यसमा जाती है। जैसे वादी के द्वारा शब्द में अनित्यत्वसिद्ध करने वाले अनुमान प्रयोग करने के बाद जाति वादी का कहना कि "यदि घट के प्रयत्नानन्तरीयक धर्मकी समानतासे शब्दको घटके समान अनित्य कहते हो तो सम्पूर्णपदार्थों की सत्वादिक धर्मकी अपेक्षा घटसे समानता होनेके कारण सभी पदार्थ

या चीज अनित्य माननी होगी जो कि युक्ति संगत नहीं है। ऐसा उत्तर अनित्य समा जाती में गर्भित है।

(२३) नित्य समा जातिः-अनित्य पने में नित्यत्व का आरोप कर खण्डन करना नित्यसमाजाति है। जैसे वादी के द्वारा यह कहने पर कि शब्द अनित्य है" जातिवादी का पूछ बैठना कि "शब्द में अनित्यत्व नित्य है अथवा अनित्य है। यदि अनित्यत्व नित्य है तो शब्द भी नित्य कहलायगा क्योंकि धर्म के नित्य होने पर धर्मी को भी नित्य मानना होगा, और यदि दूसरे पक्ष का आश्रयले कहा जाय कि अनित्यत्व अनित्य है तो शब्द स्वयं अपने आप नित्य कहलाने लगजायगा। ये मिथ्या उत्तर हैं और इनको नित्यसमामें गर्भित करते हैं।

(२४) कार्यसमा जातिः—कार्य को अभिव्यक्ति के समान मानना और इतने ही से आधार पर सत्य हेतु का खंडन करना कार्यसमा जाति है। जैसे शब्द को अनित्यत्व सिद्ध करने वाले अनुमान प्रयोगके बाद जाति वादीका कहना कि प्रयत्नके बाद शब्दकी उत्पत्ति होती है और अभिव्यक्ति (प्रगट होना) भी होती है इसप्रकार प्रयत्नके अनेक कार्य होनेसे शब्दको अनित्य कैसे कहा जासकता है ? ऐसा उत्तर असमी-

चीन उत्तर है कार्यसमा जाति में गर्भित होता है।

सूत्र—समुत्कीर्तनोसर्वनोसर्वोत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यसाद्यनादिध्रुवाध्रुवबन्धस्वामित्वविचयबंधकालबन्धान्तरबन्धसन्निकर्षाःभंगभागाभागपरिमाणक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वानुगमाएकैकोत्तरप्रकृतिबंधानुयोगद्वाराणि । २० ।

अर्थः–कषाय सहित होनेसे जीव जो कर्मके योग्य पुद्गल परमाणुओंको ग्रहण करता है उसे बंध कहते हैं। ऐसे बंध के चार भेद होते हैं। उन भेदोंमें से एक भेद का नाम प्रकृतिबंध है। इस प्रकृतिबंधके भी दो भेद हैं-मूल प्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध उत्तर प्रकृतिबंध दो प्रकार का है एकैक उत्तरप्रकृतिबंध और अव्वोगाढ़ उत्तर प्रकृतिबंध।

इस सूत्र में एकैक उत्तरप्रकृतिबंध के चौबीस भेदों को गिनाया गया है। नाम उनके अलग अलग इसप्रकार हैं:–

(१) समुत्कीर्तन (२) सर्वबन्ध (३) नो सर्वबंध (४) उत्कृष्टबंध (५) अनुत्कृष्ट बन्ध (६) जघन्यबन्ध (७) अजघन्यबन्ध (८) सादिबन्ध (९) अनादिबन्ध (१०) ध्रुवबन्ध (११) अध्रुवबन्ध (१२) बन्ध स्वामित्वविचय (१३) बन्धकाल (१४) बंधान्तर (१५) बंधसन्निकर्ष (१६) भंग विचय (१७) भागाभागानुगम (१८) परिमाणानुगम

(१६) चेत्रानुगम (२०) स्पर्शानुगम (२१) कालानुगम (२२) अन्तरानुगम (२३) भावानुगम (२४) अल्पबहुत्वानुगम ।

इन चौवीस भेदों को एकैक उत्तर प्रकृतिबंधानुयोग द्वारा भी कहते हैं ।

समुत्कीर्तनस्थाने ऽर्धच्छेदेकृतेशेषाउत्तरप्रकृतिस्थितिबंधानुयोगद्वाराणि

अर्थः-स्थितिबंध भी बंध के चार भेदों में से एक है। इसके दो भेद हैं-एक मूलप्रकृतिस्थितिबंध और दूसरा उत्तरप्रकृतिस्थितिबंध । इस सूत्रमें उत्तरप्रकृति स्थितिबंध के चौवीस अनुयोग द्वारों को गिनाया गया है। पूर्व सूत्र में जो चौवीस भेद गिनाये हैं, उनमें प्रथमभेद के नाम-समुत्कीर्तन-के स्थान पर अर्धच्छेद कर दिया जाय और बाकी नाम ऊपर वाले ही रहें आय तो वे स्थितिबंध संबंधी भेद हो जाते हैं। अलग अलग नाम इसप्रकार हैं:—

(१) अर्धच्छेद (२) सर्वबंध (३) नोसर्वबंध (४) उत्कृष्टबंध (५) अनुत्कृष्टबंध (६) जघन्यबंध (७) अजघन्य बंध (८) सादिबन्ध (९) अनादिबन्ध ।१०। ध्रुव बन्ध ।११। अध्रुव बन्ध ।१२। बन्धस्वामित्वविचय ।१३) बन्धकाल ।१४। बंध अंतर ।१५। बंधसन्निकर्ष ।१६) भंग विचय ।१७। भागाभागानुगम ।१८। परिमाणानुगम ।१९।

क्षेत्रानुगम ।२०। स्पर्शनानुगम ।२१। कालानुगम ।२२। अन्तरानुगम ।२३। भावानुगम ।२४। अल्प बहुत्वानुगम
[अपूर्ण]

पच्चीसवां अध्याय

सूत्र-अनन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदाश्चारित्रमोहनीयकर्मप्रकृतयः१

:- मोहनीय कर्म आत्मा में पाये जाने वाले स्वाभाविक सम्यक्त्व चारित्र , आदि गुणोंमें विकार पैदा कर उसे नाना पर्यायों में रुलाता फिरता है । शील सदाचार आदि में कलुषता पैदा करने के साथ ही प्राणी को कामुक , व्यभिचारी , रोगी और न जाने किन किन कठिनाइयों में लाकर पटक देता है । इस सूत्र में उन प्रकृतियों का उल्लेख किया गया है जिससे चारित्रगुण पर असर गिरता है आत्मा पतित से पतित तर होती हुई पतिततम अवस्था को प्राप्त कर लेती है । ये प्रकृतियाँ पच्चीस हैं , नाम अलग अलग ये हैं :-

(१) अनन्तानुबंधी क्रोध (२) अनन्तानुबंधी मान (३) अनंतानुबंधी माया (४) अनन्तानुबंधी लोभ (५) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध (६) अप्रत्याख्यानावरणी-मान (७) अप्रत्याख्यानावरणी माया (८) अप्रत्याख्याना वरणी लोभ (९) प्रत्याख्यानावरणी क्रोध(१०) प्रत्याख्या ना वरणी मान (११) प्रत्याख्यानावरणी माया (१२) प्रत्याख्यानावरणी लोभ (१३) संज्वलन ...

(१४) संज्वलन मान (१५) संज्वलन माया (१६) संज्वलन लोभ (१७) हास्य (१८) रति (१९) अरति (२०) शोक (२१) भय (२२) जुगुप्सा (२३) पुंवेद (२४) स्त्रीवेद (२५) नपुंसक वेद।

सूत्र :— तत्त्वकषाया : ॥२॥

अर्थ: - जो ऊपर के सूत्र में चारित्र मोहनीय कर्म की पच्चीस प्रकृतियाँ गिनाई गई हैं उन्हींको कषाय भी कहते हैं अर्थात कषाय के पच्चीस भेद हैं।

कषाय के द्वारा उन आत्मपरिणामों को ग्रहण किया जाता है जिनके द्वारा संसारी जीवों का ज्ञानावरणादि रूप कर्म क्षेत्र फल देने योग्य बनाया जाय। जो आत्मा शुद्धवीतराग भाव की हिंसा करे, उसे मलिन कर देवे, सो कषाय कहलाती है। इसके पच्चीस भेद संक्षेप में इस प्रकार है :-

[१-४] अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ [५-८] अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ [९-१२] प्रत्याख्यानावरणी क्रोधमानमाया लोभ[१३-१६]संज्वलन क्रोध मान माया लोभ [१७-२१] हास्य, रति, अरति शोक। भय। जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद ये नव नोकषाय कहलाती हैं [१-४]अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ :- ऐसे तीव्रतम क्रोध, मान, माया या लोभ

धारण रूप परिणामों न होने दें सो क्रम से अप्रत्याख्याना
वरण क्रोधमानमाया लोभ कहलाते हैं।
जो यथाख्यातचारित्र को न होने देवे क्रम से ऐसे

(६-१२) प्रत्याख्यानावरणी क्रोधमानमायाः-ऐसे नीव्र परिणाम। चाहे वे क्रोध के, मानके, माया के, या लोभ के हों। जो पूर्णत्याग रूप सकलसंयम को न होने देवे क्रमसे प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ कहलाता है।

(१३-१६) ऐसे क्रोधमान माया लोभ रूप परिणाम रूप परिणाम जो ईषत् त्याग रूप अर्थात् श्रावक के व्रत परिणाम संज्वलन क्रोधमान माया लोभ कहलाते हैं।

(१७-२५) नो कषाय का अर्थ है किंचित् या ईषत् कषाय ये नव (६) होती हैं।

सूत्र-अनन्तानुबधिक्रोधमानमायालोभस्त्यानगृद्धित्रिकदुःस्वारानादेयव अनाराचनाराचर्द्ध नाराचकीलकमद्दनन्यमोधस्वातियामनकुब्जकसंस्था-नदुर्गमनस्त्रोनीचैर्गोत्रतिर्यग्द्विकोद्योततिर्यगायूंषिमासादनेबंधव्युच्छिन्न. प्रकृतयः ।३।

अर्थः-सासादन नामके दूसरे गुणस्थान में बंध से व्युच्छिन्न होने वाली पच्चीस प्रकृतियाँ हैं। अर्थात् इस सूत्र में उल्लिखित प्रकृतियों का बंध दूसरे गुणस्थान से आगे वाले गुणस्थानों में नहीं होता है। प्रकृतियों के नाम

इसप्रकार हैं:- (१) अनन्तानुबंधी क्रोध (२) अनन्तानुबंधी मान (३) अनन्तानुबंधी माया (४) अनन्तानुबंधी लोभ (५) निद्रानिद्रा ६- प्रचला प्रचला ७- स्त्यानगृद्धि ८- दुर्भग ९- दुस्वर (१०) अनादेय ११- वज्रनाराचसंहनन १२-नाराच संहनन १३- अर्धनाराच संहनन १४- कीलक संहनन १५- न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान १६- स्वाति संस्थान १७- वामन संस्थान १८- कुब्जक १९-दुर्गमन -अप्रशस्त-विहायोगति- २०-स्त्रीवेद २१-नीचगोत्र २२-तिर्यग्गति २३-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी २४-उद्योत २५-तिर्यगायु।

सूत्र-सम्यक्त्वमिथ्यात्वप्रयोगसमादानेर्यापथप्रादोषिकी कायिक्याधिकरणिकीपारितापिकी प्राणातिपातिकी दर्शनस्पर्शनप्रात्ययिकीसमन्तानुपातानाभोगस्वहस्तनिसर्गविदारणाज्ञाव्यापादिकानाकांक्षारम्भपारिग्राहिकीमायामिथ्यादर्शनाप्रत्याख्यानक्रिया आश्रवक्रियाः ।४।

अर्थः-इस सूत्रमेंउन क्रियाओं के नाम गिनाये गये हैं जिनमे साम्परायिक आश्रव होता है । आश्रवका अर्थ है आना, योगोंके द्वारा जो कर्मोंका आगमन होता है उसे आश्रव कहते हैं। उसके दो भेद हैं एक साम्परायिक आश्रव दूसरा ईर्यापथ आश्रव । ऐसा आश्रव जो अनन्त संसार परिभ्रमणका कारण है उसे साम्परायिक आश्रव कहते हैं । इसमें कषाय की पुट भी रहती है। क्रिया पच्चीस हैं और उनके नाम

अलग अलग इस प्रकार से हैं:-

१-.सम्यक्त्व नामकी क्रिया :- देव शास्त्र गुरु की पूजा करना स्वाध्यायादि करना रूप जिन क्रियाओं से सम्यक्त्व की पुष्टि होती है उन्हें सम्यक्त्व क्रिया कहते हैं।

२- मिथ्यात्व नामक क्रिया :- खोटे देव शास्त्र गुरु आदि के प्रति श्रद्धा रखना, उनकी पूजा उपासना आदि क्रियाओं का करना मिथ्यात्व क्रिया कहलाती है। इससे संसार में प्राणी फंसता जाता है।

३- प्रयोग क्रिया :- काम आदिक के द्वारा गमनागमनादि (जाना आना आदि) क्रियाओं का करना प्रयोग क्रिया कहते हैं।

समादान नामक क्रिया :— वीर्यान्तराय और ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर आंगोपाङ्गों से युक्त आत्मा का पुद्गलों का ग्रहण करना अथवा संयमी होते हुए असंयम या अविरति की ओर अभिमुख होना समादान क्रिया कहलाती है।

५- ईर्यापथ नामक क्रिया :- जो क्रिया ईयापथ आश्रव में निमित्त होती है वह ईर्यापथ क्रिया है।

६- प्रादोषिकी क्रिया :- क्रोध के आवेश से जो क्रिया की जाती है वह प्रादोषिकी क्रिया कहलाती है।

७- कायिकी क्रिया :- दुष्टता पूर्वक उद्यम करना कायि

को क्रिया है।

अधिकरण की क्रिया :– ऐसे उपकरणों या साधनों का ग्रहण करना जिनसे हिंसादि–काम हो सकते हों। दूसरे शब्दों में, हिंसाके उपकरण लेना अधिकरण की क्रिया कहलाती है।

(९)पारितापिकी नामकी क्रिया:– ऐसी क्रिया जो प्राणियों को दुःख पहुंचाती है, पारितापिकी क्रिया कहलाती है।

(१०)प्राणातिपातकी नामकी क्रिया :-इन्द्रिय बल आयु आदि को प्राण कहते हैं, उनका जो वियोग करना सो प्राणातिपातकी क्रिया है। वियोग करना से मतलब जान ले लेने से है।

(११)दर्शन नामकी क्रिया:-रागादिक भावों में जिसका हृदय भरा हुआ है ऐसे प्रमादी पुरुष का रमणीय रूप के देखने के लिये प्रयत्न करना दर्शन नामकी क्रिया कहलाती है।

(१२)स्पर्शन नामकी क्रिया:-कामुकता रूप प्रमाद के वश में हुए प्राणी की आलिंगन करने की भावना करना स्पर्शन नामकी क्रिया है।

[१३]प्रात्ययकी नामकी क्रिया:- विषय सेवन हेतु नई नई सामग्री को जुटाना प्रात्ययकी नामकी क्रिया है।

[१४] समन्तापातक्रिया :– उस स्थान पर जहां स्त्री

पुरुष आदि उठते बैठते हों वहां अंतर्मल का उत्सर्ग करना अर्थात , टट्टी पेशाब आदि करना ।

[१५] अनाभोग क्रिया :– बिना झाड़ेबुहारे गन्दे स्थान पर अपने शरीर को पटक देना , खिन्न और उदास होते हुए उठना बैठना , अनाभोग क्रिया कहलाती है ।

(१६) स्वहस्त क्रिया:—जो दूसरे के द्वारा की जाने योग्य क्रियाको स्वयं करने के लिये उद्यत हो उठना है सो स्वहस्त नामकी क्रिया है ।

(१७) निसर्ग क्रिया:-पापवर्धक प्रवृत्ति के लिये अपनी सम्मति देना निसर्ग क्रिया है ।

(१८) विदारण नामकी क्रिया:–आलस्य के कारण समीचीन क्रियाओं को नहीं करना अथवा दूसरेके द्वारा आचरित (किये गये) पाप या हिंसात्मक कामों को प्रगट कर देना विदारण क्रिया कहलाती है ।

(१९) आज्ञाव्यापादकी नामकी क्रिया:–चरित्र मोहनीय कर्म के प्रबल उदयके कारण शास्त्रमें वर्णित आवश्यक क्रियाओं को करने की सामर्थ्य नहीं ,अतः अपनी कमजोरी को छिपाते हुए उन समीचीन , क्रियाओं का दूसरे या मिथ्या रूप में कथन करना, उनका अन्यथा स्वरूप बतलाना,आज्ञाव्यापादकी क्रिया कहलाती ।

(२०) अनांकाक्षा क्रिया :–. अपनी चालबाजी,या

आलस्य के कारण आगम में कहीं हुई विधि के प्रति अनादर भाव व्यक्त करना अनाकांक्षा नामकी क्रिया है।

(२१) आरम्भ या आंरभ नामकी क्रिया :– प्राणोयों के छेदन भेदन, आदि हिंस्य क्रियाओं को करने में तत्पर रहना अथवा दूसरा कोई ऐसी व्यक्ति ऐसी ही मारने काटने आदि हिंसक क्रियाओं को कर रहा हो तो उसे देख कर प्रसन्न होना आंरभ नामकी क्रिया है।

(२२) पारिग्राहिकी क्रिया :– इकट्ठा या बटोरा हुआ परिग्रह सही सलामत रुपसे बना रहे इसके लिये उस की रक्षा में लगे रहना पारिग्राहिकी क्रिया है ।

(२३) माया नामकी क्रिया :– ज्ञान दर्शन चारित्र आदि के विषय में कपट पूर्ण वचनादिका प्रयोग करना माया क्रिया है ।

[२४] मिथ्यादर्शन नामकी क्रिया :– दूसरा कोई व्यक्ति या प्राणी मिथ्यात्व से युक्त क्रियाओं को करता है या दूसरों से कराता है उसकी [क्रिया की] तारीफ करते हुए उसमें उसे प्रेरणा देना ; " तुम ठीक कर रहे इसी तरह जोश से करते हुए बढ़े चलो ,, आदि रुप से कहते हुए दृढ़ता और स्थिरता पैदा करना मिथ्यादर्शन नामकी क्रिया है ।

[२५] अप्रत्याख्यान नामकी क्रिया :– संयम का

घात वाले कर्म के उदय से संयम का पालन नहीं करना उसके प्रति उपेक्षा करते हुए छोडने को तैय्यार हो जाना अप्रत्याख्यान नामकी क्रिया है। इस तरह ये कुल पच्चीस क्रिया जैसा कि बताया जा चुका है, साम्परायिक आश्रव के कारण हैं।

सूत्रः—कखगघङचछजझञटठडढणतथदधनपफबभमकाद्यवर्गाक्षराणि।५।

अर्थ :- व्याकरणके मूल या आधार अक्षर हैं। उन अक्षरोंके दो भेद हैं एक स्वर और दूसरा व्यंजन। व्यंजनों में आदि के पच्चीस अक्षरों को स्पर्श कहते हैं। इनमें पांच अक्षरवाले पांच वर्गों का समूह रहा है। पांच वर्गों के नाम ये हैं :- कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग प्रत्येक के पांच पांच अक्षरों को जोडने में पच्चीस वर्गाक्षर बन जाते हैं। अक्षर अलग अलग इस प्रकार हैं :- क ख ग घ ङ कवर्ग, च छ ज झ ञ चवर्ग ट ठ ड ढ ण टवर्ग, त थ द ध न तवर्ग, प फ ब भ म पवर्ग।

सूत्रः— शंकाकांक्षाविचिकित्सामूढदृष्टि—अनुपगूहनास्थितिकरणावात्सल्याप्रभावनाज्ञानरूपकुलजातिबलैश्वर्यधनतपोमदाकुदेवशास्त्रगुरूतत्सेवकादेवगुरुलोकमूढताःसम्यक्त्वदोषाः।६।

अर्थ :- मोक्ष मंदिरकी पहली सीढीका नाम सम्यग्दर्शन है। उसका अनुभवन समीचीन रूप से हो सके इसके लिये आवश्यक है कि प्राणी उसे पच्चीस दोषों से

निमुक्त करते हुए उसमें पच्चीस दोषों को न लगाते हुए अपने आत्म परिणामों में वस्तुस्वरुप के प्रति अटल श्रद्धा रक्खे। दोषों को, जिनको कि हटाना आवश्यक है, इस प्रकार अलग अलग रूप से गिना जा सकता है :- आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन् और तीन मूढ़ताओं को मिला देने स पच्चीस दोष हो जाते हैं :-आठ दोष- (१) शंका नामक दोष (२) कांक्षा [३] विचिकित्सा [४] मूढ़ दृष्टि [५] अनुपगूहन [६] अस्थिति करण [७] अवात्सल्य [८] अप्रभावना। आठ मद – [६] ज्ञान मद (१०) रूप मद -११- कुल मद -१२-जाति मद -१३ बल मद -१४- ऐश्वर्यमद -१५- धनमद -१६- तपमद। छह अनायतन् -१७-कुदेव-१८-कुगुरू-१६- कुशास्त्र -२०- कुदेव सेवक -२१- कुशास्त्र सेवक २२- कुगुरू सेवक। तीन मूढ़ता-२३- देवमूढ़ता -२४- गुरूमूढ़ता -२५- लोकमूढ़ता।

-१-शंका नाम दोषः--सर्वज्ञ वीतरागी जिनेन्द्र द्वारा विवेचित वस्तु स्वरूप में संदेह करना, उसमें विश्वास न करना शंका नामक दोष है।

कांक्षा नामक दोष :-संसार के विषय भोगों की वाञ्छा करना; उनमें तीव्र लालसा रखना कांक्षा नामक दोष है।

३-विचिकित्सा नामक दोषः-व्रती संयमी व्यक्तियों के मलिन शरीर को देख उनके प्रति ग्लानि या घृणा भाव रखना

विचिकित्सा दोष है।

-४- मूढ़ दृष्टि नामक दोषः—मिथ्यात्व वर्धक विचारों और क्रियाओंकी मनसे अनुमोदन करना, वचन से सराहना करना और कायिक चेष्टाओं से समर्थन करना मूढ़ दृष्टि कहलाती है।

-५-अनुपगूहन नामक दोषः—धार्मिक आचरण करने वाले व्यक्तियों की, धर्म की और धर्मायतनों हंसी उड़े, उनकी भद्द हो इस लिहाज से झूंठो निन्दा करना या छोटे मोटे दोषों को बढ़ा चढ़ा कर फैलाना अनुपगूहन दोष है।

-६-अस्थितिकरण नामक दोषः—जो व्यक्ति धर्म से या सच्चरित्र से चलायमान हो रहा है उसको धर्म में स्थिर न करते हुए उसके विचारों का समर्थन कर पतन के गर्त में गिरा देना अस्थिति करण है।

-७-अवात्सल्य नामक दोषः—सहधर्मी बन्धुओं से प्रेमभाव न रखते हुए उनके प्रति द्वेष भाव रखना अवात्सल्य दोष है

-८-अप्रभावना नामक दोषः—जिन मत को प्रभावना पैदा करने वाली पंचकल्याणकादि पूजाओं का न करना और यदि कोई कर रहा हो तो उसमें रोड़े अटकाना अप्रभावना नामक दोष है।

-९-ज्ञानमदः—मद का अर्थ गर्व या घमंड है। अपने में पाये जाने वाले ज्ञान का गर्व करना। -१०-रूपमदः—अपने

सौन्दर्य का गर्व करना। -११-कुलमदः- अपने पिता के
वंश का आश्रय घमड करना कुलमद है।
(१२) जातिमदः-अपने मामा के कुल का आश्रय ले तत्संबं
गर्व करना जाति मद है।
(१३) बलमदः- अपनेमें पायेजाने वाले विशेष बल-ताकत
को लक्ष्य में रख उसका घमंड करना।
ऐश्वर्यमद :- संपत्ति, ठाठ बाठ के कारण अपने आपके
दिमाग को आसमान में चढ़ाये रखना ऐश्वर्य मद है।
-१५-धनमदः-रुपये पैसे रूप धन के धनपति होने के कारण
घमंड में चूर रहना धनमद है।
-१६-तपमद :-कठिन आसनादि को लगा कठोर तपस्या मैं
ही कर सकता हूँ, अन्य कोई नहीं ऐसा गर्व करना तपमद
-१७-कुदेव अनायतन :-खोटे देवों में पूज्य बुद्धि रख उ
की उपासनादि करना अधर्म को प्रोत्साहन देना है।
-१८-कुशास्त्र अनायतन :-उन यज्ञादिकों का पोषण कर
वाले शास्त्रों का समर्थन करना जिनमें हिंसा को मान्यत
दी है कुशास्त्र अनायतन है।
-१९-कुगुरू अनायतन :-जो राग द्वेपादि मल से युक्त
तथा अनेक परिग्रहों को घटोरे फिरते हैं ऐसे गंजेड़ी भंगेड़
नशेबाज साधुओं को गुरु बुद्धि से पूजना कुगुरू अनायतन
-२०-कुदेव सेवक अनायतनः- कुदेवों की सेवा करने वाले

पुरोहित आदि की पूजादि करना अनायतन [अधर्म] का कारण है।

-२१-कुशास्त्र सेवक अनायतनः—खोटे शास्त्र के सेवकों का सन्मानादि करना अधर्म वर्धक है।

-२२ कुगुरू सेवक अनायतनः-खोटे गुरुओं के चेले चपाटों को बड़ा मानना भी एक अनायतन है।

-२३-देवमूढ़ता :—मुझे अमुक देव [भैरों भवानी आदि]की उपासना से वर की प्राप्ति हो जायगी। मेरे कार्य की सिद्धि, रोग से मुक्ति इनसे होगी आदि प्रलोभना के वश में देवी देवताओं को पूजते फिरना, देव मूढ़ता है।

-२४-गुरूमूढ़ता :-विषय वासनाओं से लिप्त, आरंभ परिग्रहादि ममता में फंसे साधु नहीं अपितु स्वादुओं [अच्छे अच्छे रस के लोलुपी] को उपास्य मानना गुरूमूढ़ता है।

२५-लोकमूढ़ताः--अमुक नदी में नहाने से, डुबकी लगाने से पाप छूट जाते हैं अमुक पर्वत पर से गिरने पर मुक्ति मिलती है, अमुक जगह की धूल लगाने से कर्म टट जाते हैं ऐसा ख्याल कर नदी समुद्रों में नहाना, पहाड़ों की चोटियों से गिरना, ऊंचे ऊंचे बालू के ढेर बनाना आदि क्रियाएँ लोक मूढ़ता के अंतर्गत है इस प्रकार ये पच्चीस दोष हैं।

सूत्रः—

लस्यशास्त्रविक्रयबहुश्रुतगर्वमिथ्योपदेशनाकालाध्ययनाचार्यप्रत्यनीक तोपाध्यायप्रत्यनीकताश्रद्धाभावानभ्यासतीर्थोपरोधबहुश्रुतावमान ज्ञानाधीतिशाठ्यताप्राणातिपातस्वपक्षपरिग्रहपंडितत्वस्वपक्षापरित्यागावद्धप्रलापोत्सूत्रवादसाध्यपूर्वकज्ञानाधिगमाः ज्ञानावरणस्याश्रवहेवतः। ७।

अर्थ :- आत्माके ज्ञानगुण को जो न प्रगट होने देवे उस कर्म का नाम ज्ञानवरण है। उसके योग्य कर्म परमाणुओं का जिन कारणों से आगमन होता है उन का उल्लेख इस सूत्र में किया गया है। कारणों की संख्या पच्चीस है और नाम अलग अलग इस प्रकार हैं :- -१- ज्ञानप्रदोष -२- ज्ञाननिन्हव -३- ज्ञानमार्त्य -४- ज्ञानान्तराय -५- ज्ञानासादन [६] ज्ञानोपघात [७]अनादरश्रवण [८]अर्थ श्रवणआलस्य (६) शास्त्र विक्रय(१०) बहुश्रुतगर्व [११] मिथ्योपदेशना [१२]अकालाध्ययन १३-आचार्यप्रत्यनीकता १४ उपाध्यायप्रत्यनीकता १५श्रद्धा अभाव १६ अनभ्यास १७तीर्थोपरोध १८ बहुश्रुतावमान १६ ज्ञानाधीतिशाठ्यता २० प्राणातिपात २१ स्वपक्षपरिग्रह पंडितत्व २२ स्वपक्ष-अपरित्याग २३ अवद्धप्रलाप उत्सूत्रवाद २५ साध्यपूर्वकज्ञानाधिगम :-

ज्ञानप्रदोष नामक आश्रवहेतु :- मोक्ष के साधन भूत तत्वज्ञान के निरूपण के समय अपने मन ही मन में तत्वज्ञान

के प्रति उसके व्याख्यान करने वाले के प्रति तथा उसके साधनों के प्रति मन ही मनमें, मुख से कुछ भी न कह कर ईर्ष्या करना या जलते रहना ज्ञान प्रदोष कहलाता है।

२–ज्ञाननिह्नव नामक आश्रवहेतुः– शास्त्रका ज्ञान होते हुए भी किसीके पूंछने पर कलुपितभावसे यह कह देना कि मैं नहीं जानता निह्नव नामक आश्रव हेतु है

३–ज्ञानमात्सर्य नामक हेतुः– अपने को शास्त्र का ज्ञान होते हुए भी दूसरों को इसलिये नहीं बतलाना कि अगर बतला दूंगा तो वह बराबरी का जानने वाला हो जायेगा, ज्ञान मात्सर्य नामक आश्रव हेतु है।

४–ज्ञानान्तराय नामक हेतुः– कलुषित वृत्ति से युक्त होते हुए किसी के ज्ञानाभ्यास में बाधा पहुँचाना, उसमें विघ्न डालना ज्ञानान्तराय नामक हेतु है।

५–ज्ञानासादन नामक आश्रव हेतुः–सम्यग्ज्ञान का समादर न करना, दूसरा कोई ज्ञानदे रहा हो तो वाणी या शरीर की चेष्टा से निषेध करना, यहाँ तक कि वक्ता या उपदेष्टा को रोक देना ज्ञानासादन है।

६–उपघात नामक आश्रव हेतुः–युक्ति युक्त समीचीन ज्ञान को एक दम झूंठा कहना, उसमें दोष नहोते हुए भी अपनी विपरीत मति के जबर्दस्ती दोष निकालना उपघात है

७–अनादरार्थश्रवण नामक हेतुः–ज्ञान के साधन..

आगम ग्रंथों का प्रवचन या अर्थ विवेचन अनादर के साथ सुनना अनादरार्थश्रवण है ।

८–अर्थश्रवणालस्य नामकहेतुः– अर्थ को सुनने में आलस करना, अर्थात, वक्ता सूत्र या आगम ग्रंथ का व्याख्यान कर रहा हो और अपने ऊंघते हुए बैठ कर उपेक्षाभावसे सुनता रहना अर्थश्रवणालस्य नामक हेतु है ।

९–शास्त्र विक्रय नामक हेतु :-जीव हितकारी जिनोपदिष्ट,वस्तु स्वरुप का जिनमें विवेचन हो ऐसे शास्त्रोंको अनादर के साथ रद्दी आदि के रूप में बेचना शास्त्रविक्रय कहलाता है । यह ज्ञानावरणी के आश्रवका कारण है ।

१०–बहु श्रुतगर्व नामक हेतुः– नानामिथ्या शास्त्रों के अध्ययन के कारण घमण्ड करना । उसके मद में दूसरे ज्ञानियों को तुच्छ उनका अनादर करना बहुश्रु तगर्व कहलाता है ।

११–मिथ्योपदेशना नामक हेतु :– किसी कदाग्रह, पक्षमोह या स्वार्थ सिद्धी को लक्ष्य में रख पाप एवं अनाचार फैलाने वाले उपदेश देना, वस्तु स्वरूप की उलटी ही विवेचना करना मिथ्योपदेशना कहलाती है । ज्ञानावरणी के आश्रवहेतुओं में एक यह भी है ।

१२–अकालअध्ययन नामक हेतुः—जो समय ज्ञानाराधन या शास्त्र अध्ययनके लिये निषिद्ध या वर्जित हो उस

में पढ़ना अध्ययन करना आदि अकालाध्ययन कहलाता है।

१३-आचार्यप्रत्यनीकता नामक हेतुः-जो साधुओं को दीक्षा शिक्षा देकर चारित्र का आचरण करावे, संघ को अपने नियंत्रण में रक्खे तथा स्वयं पंचाचारका पालन करे उसे आचार्य कहते हैं। उनके खिलाफ मन वचन आदिकी प्रवृत्ति करना उनके विरुद्ध मिथ्या प्रचारादि करना आचार्य प्रत्यनीकता कहलाती है। यह एक प्रकार का औद्धत्य है।

१४-उपाध्यायप्रत्यनीकता नामक हेतु :- जो संघ स्थित साधुओं में विशेष विद्वान हों तथा संघके अन्य व्यक्तियों को पठन पाठन कराते हों उन्हें उपाध्याय कहते हैं। उनका उद्दण्डता से सामना करना, उनके खिलाफ मिथ्या प्रवादों को फैलाना उपाध्याय प्रत्यनीकता है।

१५-श्रद्धा-अभावनामक हेतुः- ज्ञान एवं ज्ञान के साधन भूत आगमग्रंथ, वक्ता आदि में श्रद्धा नहीं रखना श्रद्धा -अभाव कहलाता है।

१६-अनभ्यास नामक हेतु :-अर्जित ज्ञान सम्पदा का उपयोग नहीं करना अनभ्यास कहलाता है। इससे ज्ञान का विकास नहीं हो पाता।

१७-तीर्थोपरोधनामक हेतुः-जीव हितकारी जो धर्म मार्ग प्रवर्तित हो रहा है, उसमें व्यर्थ के रोड़े अटकाना, उसके खिलाफ मिथ्यामत को खड़े कर प्रचार करने लग

जाना तीर्थोपरोध कहलाता है।

(१८) बहुश्रुतावमान नामक हेतुः-अनेक शास्त्रों के ज्ञाता व्यक्तिकी खिल्ली उड़ाना, उसका तिरस्कार करना, बहुश्रुतावमान कहलाता है। इस क्रिया को करने वाला व्यक्तिकी अवहेलनाके साथ ही साथ उसमें पाये जाने वाले बहुश्रुतत्वकी भी मखौल उड़ाता है, जो कि ज्ञानवरण में कारण होती है (१९) ज्ञानाधीतिशास्त्रता नामक हेतु। (२०) प्राणातिपात नामक हेतुः-ऐसा ज्ञान सिखाना, उसके साधनों को बतलाना जिससे प्राणियों के प्राणों का घात हो, हिंसा की ओर प्रवृत्ति हो, उसे प्राणातिपात नामक ज्ञान कहते हैं जो कि ज्ञानावरणी के आश्रव का कारण है।

(२१) स्वपक्षपरिग्रह पंडितत्व नामक हेतुः—अपना पक्ष दोषपूर्ण है, मिथ्या है फिर उसमें चिपके रहना, अपनी पण्डिताई के बल पर उसका समर्थन करते रहना, स्वपक्ष परिग्रह पंडित्व है। (२२) स्वपक्ष अपरित्याग नामक हेतुः-युक्ति आदि के द्वारा सिद्ध हो चुका कि ग्रहण किया हुआ पक्ष मिथ्या है फिर उसको नहीं छोडता उसको पकड़ कर अड़े रहना, स्वपक्ष अपरित्याग कहलाता है।

(२३) अबद्धप्रलाप नामक हेतुः—बिना किसी अवसर या प्रसङ्ग के असंबंधित अपनी हांकना अबद्धप्रलाप

कहलाता है।

(२४) उत्सूत्रवाद नामक हेतुः–सूत्र के शब्दों को तोड़ मरोड़कर आगम के विपरीत अर्थ करना, मन माने रूप में उच्छृंखल होते हुए मनगढ़न्त अर्थों का व्याख्यान करना उत्सूत्रवाद कहलाता है।

(२५) साध्यपूर्वक ज्ञानाधिगम नामक हेतुः–अपने सांसारिक मतलब या प्रयोजन को गाँठ लेने के लिये ज्ञान (मिथ्या ज्ञान) का पढ़ना, लिखना या सीखना साध्यपूर्वकज्ञानाधिगम कहलाता है। ये पच्चीस तथा इन्हीं से मिलने जुलने अन्य ऐसे कारण ज्ञानावरणी के आश्रव में हेतु होते हैं।

सूत्र :—जातिकुलबलरूपश्रुताज्ञैश्वर्यतपोमदपरावज्ञोत्प्रहसनपरपरिवादशीलताधार्मिकजननिन्दात्मोत्कर्षान्ययशोविलोपासत्कीर्त्युत्पादनात्मोत्कर्ष प्रकाशनगुरुपरिभवतदुद्घट्टनदोषख्यापनविहेडनस्थानावमानभर्त्सन गुणावसादनानभिवादनानभ्युत्थानतीर्थकराधिक्षेपजातीयानीचै र्गोत्रस्य । ८ ।

अर्थः–इस सूत्र में नीच गोत्र के आश्रव कारणों को गिनाया गया। जिनसे नीच गोत्र का आश्रव होता है ऐसे कारणों की संख्या मोटे रूप से पच्चीस हैं। उनके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं:–

(१) जातिमद (२) कुलमद (३) बलमद

मद (५) श्रुतमद (६) आज्ञामद (७) ऐश्वर्य मद (८) तप मद (६) पर-अवज्ञा (१०) उत्प्रहसन (११) परपरिवाद शीलता (१२) धार्मिकजननिन्दा (१३) अन्ययश विलोप (१४)असत्-कीर्ति उद्भावन(१५)आत्मउत्कर्षप्रकाशन (१६) गुरु परिभव (१७) तदुद्धन (१८) दोषख्यापन (१६) विहेडन (२०) स्थानावमान (२१) भर्त्सना (२२) गुणावसादना (२३) अनभिवादन (२४) अनभ्युत्थान (२५) तीर्थकरादिक्षेप

(१) जातिमदः-अपने मातुल पक्षका आलंबन ले गर्व करना ।

(२) कुलमद :-पितृ कुलका आलम्बन लेकर घमंड करना ।

(३) बलमद :- अपने में पाई जाने वाली शक्ति विशेष का गर्व करना ।

(४) रुपमद :- सुन्दर आकृति एवं सुरूप के कारण घमंड करना ।

(५) श्रुतमदः–स्वयं में पाई जाने वाली श्रुतज्ञता का घमंड करना ।

(६) आज्ञामद :– अपने में पाये जाने वाले अधिकार, सत्ता या आज्ञाप्रदायकत्व का अभिमान करना ।

(७) ऐश्वर्यमद :- अपने पास पाये जाने वाले ठाठ

चाट रुपये पैसे आदि का आश्रय ले घमंड करना।

(८)तपमदः-विशेष तपश्चर्या ऋद्धिऔर तज्जन्यऋद्धि आदि का आश्रय लेकर उसका अभिमान करना।

ये आठ मद नीचगोत्र के आश्रय के कारण हैं। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ हुआ कि आठ मदों से नीच गोत्रकी प्राप्ती होती है।

(९) परावज्ञानामक हेतु :- पर का अर्थ है स्व के (खुद के) अतिरिक्त अन्य प्राणी। उनकी अवज्ञा करना, अर्थात् ,दूसरे व्यक्ति के प्रति उचित आदरभाव न बतलाना परावज्ञा कहलाती है। इससे नीच गोत्रका आश्रव होता है।

(१०) उत्प्रहसन नामक हेतु :- दूसरे को नीचा दिखाने की गरजसे जोर से अट्टहासादि करना उत्प्रहसन कहलाता है।

(११) परपरिवाद शीलता नामक हेतु :- दूसरे की निन्दा करना, उसको नीचा दिखाने की गरज से मिथ्या दोषारोपण कर लज्जित करना पर-परिवादशीलता है।

[१२] धार्मिकजननिन्दा नामक हेतु:-संयमपूर्वक आचरण करने भोले भाले धार्मिकपुरुषोंके विषयमें बेसिर पैरकी बातें खड़ी कर उनकी निन्दा या बुराई करना धार्मिक जन निन्दा कहलाती है।

(१३) [illegible] यशविलोप नामक हेतु:-

की कीर्ति फैल रही हो ऐसे कीर्तिकारक कारणों को ओझल करदेना अन्य यशविलोप कहलाता है।

१४– असत्कीर्ति उन्दावन नामक हेतुः-दूसरे के नाम में कालिख लगाने वाली, किसी जमाने की दबी हुई बातों को प्रगट करना उनको सामने रखसामने उन्नति में रोड़े अटकाना असत्कीर्ति उद्भावन कहलाता है।

१५–आत्मोत्कर्ष प्रकाशन नामक हेतुः–स्वयंके बड़प्पन को बढ़ाने वाली छोटी मोटी बातों को बढ़ा चढ़ा के सामने रखना आत्मोत्कर्ष प्रकाशन कहलाता है।

१६—गुरुपरिभवनामक हेतुः–अपने सम्मानीय गुरुजनों का अपमान या तिरस्कार करना उनको उचित आदर सन्मान न देना गुरुपरिभवनामक हेतु कहते हैं।

तदुद्धननामक हेतु :--कहीं किसी स्थान पर हुए गुरुजनों के अपमान या तिरस्कार को सबके समक्ष कहना, उन बातों का उद्घाटन करना तदुद्धन कहलाता है।

१८–तद्दोषख्यापन नामक हेतु :–गुरुजनों में पाये जाने वाले दोषों को उनको नीचा दिखाने के गरज से सब के सामने कहते फिरना तद्दोषख्यापन कहलाता है।

१९विहेडन नामक हेतु :--अतिशय दिल्लगी बाजी में लगे रहना अर्थात् दूसरे को झेंपाने की गरज से उसकी

मखौल उड़ाना विहेडन कहलाता है।

(२०) स्थानावमान नामक हेतु :-योग्य कुलीन व्यक्तियों की अवमानना, उनकी उपेक्षा या तिरस्कारादि करना स्थानावमान् कहलाता है। ये भी नीच गोत्र के कारणों में से एक है।

(२१) भर्त्सना नामक हेतुः अपना प्रभुत्व या अधिकार बतलाने की गरज से अकारण ही या छोटे मोटे कारणों पर जरूरत से ज्यादा डांट फटकार बतलाना भर्त्सना कहलाती है।

(२२) गुणावसादन नामक हेतुः-सदाचार शील आदि सद्गुणों के विषय में ऐसी बातों को फैलाना या कहना जिससे उनका महत्व कम हो जाय गुणावसादन कहलाता है।

(२३) अनभिवादन नामक हेतुः-पद, गुण, योग्यतादि से समादरणीय व्यक्तियों, धर्मायतनों आदि के प्रति नमस्कारादि न करना, उनके प्रति हाथ आदि न जोड़ना अनभिवादन कहलाता है। इसमें अविनय की भावना निहित रहती है।

(२४) अनभ्युत्थान नामक हेतुः-वयोवृद्ध गुरुजनों के प्रति उचित आदर सन्मान न करना। उनके आने पर खड़े नहीं होना आदि गर्वपूर्ण बातें अनभ्युत्थान में सन्निहित हैं।

(२५) तीर्थकराधिक्षेप नामक हेतुः-धर्म तीर्थ के प्रवर्तक, परम हितोपदेशी, सर्वज्ञ तीर्थकरों एवं पूज्य परमेष्ठियों के प्रति छींटा कशी करना उनके ऊपर भी कवलाहारादि असंगत दोषों का लगाना तीर्थकरादिक्षेप कहलाता है। ये पच्चीस और एतज्जातीय अन्य बातें नीच गोत्र की प्राप्ति में कारण हुआ करती हैं।

सूत्र-तद्विपर्यया उच्चगोत्रस्य ।६।

अर्थः-आठ कर्मों में से एक कर्म का नाम गोत्र कर्म है। उसके दो भेद हैं (१) नीच गोत्र (२) उच्च गोत्र। नीच गोत्र के कारणों का उल्लेख पूर्व सूत्र में किया जा चुका है। इस सूत्रमें उच्च गोत्रके कारणों को बतलाया जारहा है। जिसके उदय से संसार से सम्मानित, प्रसिद्ध इक्ष्वाकु, यदु, कुरु, आदि महान कुलों में जन्म प्राप्त हो उसे उच्च गोत्र कहते हैं। जो पच्चीस कारण पूर्वसूत्र में नीच गोत्र के बतलाये हैं उनसे ठीक उल्टे स्वरूप वाले पच्चीस कारण उच्च गोत्र के हैं। यहां उनके स्वरूप को न बतलाते हुए मात्र कारणों का नाम निर्देश कर दिया जाता हैः-

(१) जाति-अमद नामक उच्च गोत्र हेतु (इसी तरह तरह आगे लिखे जाने वाले नामों के साथ "नामक उच्च गोत्र हेतु" पद जोड़ लेना चाहिये (२) कुल अमद (३)

बल अमद (४) रूप अमद (५) श्रुत अमद [६] आज्ञा अमद [७] ऐश्वर्य अमद [=] तप अमद [६] पर-अनवज्ञा [१०] उत् अप्रहसन [११] पर अपरिवाद शीलता [१२] धार्मिकजन प्रशंसा [१३] अन्य यश प्रकाशन [१४] सत्कीर्ति उद्भावन [१५] आत्मोत्कर्ष अप्रकाशन [१६) गुरु-अपरिभव ।१७। तद अनुद्धन ।१=। दोष अल्पापन (१६) अविहेडन ।२०। स्थान मान ।२१। अभर्त्सना ।२२। गुण-अनवमादना ।२३। अभिवादन ।२४। अभ्युत्थान ।२५। तीर्थंकरादि-अनधिक्षेप ।

सूत्र-आचारसूत्रकृत्स्थानसमवायव्याख्याप्रज्ञप्तिज्ञातृकथोपासकाध्ययनान्तकृद्दशानुत्तरोपपादिकदशाप्रश्नव्याकरणविपाकसूत्रोत्पादाग्रायणीवीर्यवादास्तिनास्तिप्रवादज्ञानप्रवादकर्मप्रवादसत्यप्रवादात्मप्रवादप्रत्याख्यानविद्यानुवादकल्याणवादप्राणवादक्रियाविशाललोकबिन्दुसाराण्युपाध्यायसर्वमूलगुणाः ।१०।

अर्थ इस सूत्र में उपाध्याय के मूल गुणों को गिना या गया है । चूंकि वह साधु होता है अतः अट्ठाईस मूल गुणों को तो धारण करता ही है किन्तु उपाध्याय होने के नाते उस में पच्चीस मूलगुणों का होना और आवश्यक है । उपाध्याय का उपाध्यायत्व इसी में है कि वह ग्यारह अंग चौदह पूर्व का पाठी हो । ये ही पच्चीस उनके मूलगुण कहलाते हैं ।नाम उनके अलग अलग इस प्रकार

हैं:-

ग्यारह अंगः-१- आचारांग २- सूत्रकृतांग ३- स्थानाङ्ग ४- समवायाङ्ग ५- व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग ६-ज्ञातृकथाङ्ग ।७।उपासकाध्ययनाङ्ग ।८।अंतकृद्दशांग ।६। अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग ११-विपाकसूत्राङ्ग । चौदह पूर्वः-(१२) उत्पादपूर्व (१३) आग्रायणी पूर्व (१४) वीर्यानुप्रवाद पूर्व (१५) अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व (१६) ज्ञान प्रवाद पूर्व (१७) कर्म प्रवाद पूर्व [१८] सत्य प्रवाद पूर्व [१६] आत्मप्रवाद पूर्व [२०] प्रत्याख्यानपूर्व [२१] विद्यानुवाद पूर्व [२२] कल्याण वाद पूर्व (२३) प्राणानुवाद पूर्व [२४] क्रिया विशाल पूर्व [२५] लोक बिन्दु सार नामक पूर्व ।

१—आचाराङ्ग नामकमूलगुणः- इसमें १८००० मध्यम पद हैं। मुनियों का आचार विशेष रूप से वर्णित है।

२— सूत्रकृतांग नामक मूलगुण :- यह अङ्ग ३६००० मध्यम पद वाला है । इसमें ज्ञान उसकी विनय, अध्ययनक्रिया आदि का सविस्तार वर्णन है।

३- स्थानांग नामक मूलगुण :- ४२००० मध्यम पदों में यह वर्णित है। द्रव्य, उसके एक, दो आदि विकल्पों से लेकर असंख्य विकल्पों तक, का अनेक नयों उपनयों द्वारा स्वरूप विवेचित है।

४-समवायाङ्ग नामक मूलगुणः—१६४००० मध्यम पद वाले इस अंग में द्रव्यों का वर्णन किसी अपेक्षा द्वारा परस्पर की तुलना या समानता से है।

५- व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक मूलगुणः- २२८००० पदों वाला यह अंग साठ हजार प्रश्नोत्तर के रूप में द्रव्यों का वर्णन करता है।

६-ज्ञातृकथा नामक मूलगुण :- इसमें जीवादि द्रव्योंका स्वभाव तीर्थंकरोंके माहात्म्य आदि धर्म कथाओं का वर्णन है। पद इसके ५५६००० हैं।

७- उपासकाध्ययनांग नामक मूलगुणः-इसमें उपासक जो श्रावक उनके व्रतों का विस्तार से वर्णन है। इस के पदों की संख्या ११७०००० है।

८-अंतकृद्दशांग नामक मूल गुणः—प्रत्येक तीर्थ करके काल में उपसर्ग सहकर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले दश दश मुनियों के चरित्र का वर्णन इसमें है। २३२८००० इसके पद हैं।

९--अनुत्तरौपपादिक दशांग नामक मूलगुणः- प्रत्येक तीर्थ कर के समय में चार प्रकार के भयंकर उपसर्गों का सहन कर और समाधि द्वारा प्राण त्याग कर अनुत्तर विमानों में पैदा होने वाले दश दश मुनियों का विस्तार से वर्णन है। इसके ९२४४००० पद हैं।

१०--प्रश्नव्याकरणाङ्ग नामक मूलगुणः--९३१६००० मध्यम पद वाले इस अंग में नष्ट, लाभ अलाभ आदि त्रिकाल संबंधी प्रश्नों के उत्तर देने की विधि है आक्षेपिणी आदि कथाएं भी है।

११– विपाकसूत्रांग नामक मूलगुणः--कर्म प्रकृतियों की उदय उदीरणा आदि का विस्तार से वर्णन इस अंग में है। पदों की संख्या १८४००००० एक करोड़ चौरासी लाख है।

१२-२५--इसी तरह चौदह पूर्व भी जिन में कुल मिला कर १९५ वस्तु नामक अधिकार है उनके भी पाठी उपाध्याय परमेष्ठी होते है।

सूत्र—ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिन पारिस्से स्वाहा" इति पञ्चविंशत्यक्षर मंत्र वर्णाः (११)

अर्थ--पच्चीस अक्षर वाले मंत्र को इस सूत्र में लिखा गया है मंत्र के अक्षर अलग अलग इस प्रकार है।

ॐ जो ग्गे म ग्गे त च्चे भू दे भ व्वे भ वि स्से अ क्खे प क्खे जि न प रि स्से स्वा हाँ।

(अपूर्ण)

ॐ शान्ति

अर्जुन प्रिंटिंग प्रेस